दिसंबर-2023

अखण्ड ज्योति

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

वर्ष – 87 । अंक – 12 । प्रति – ₹ 25 । ₹–300 वार्षिक

5 स्वयं को समग्रता से जान लेना है अध्यात्म

16 ध्यान से आनंद की ओर

34 पुलिस अदालत है आसान, किंतु अटल है ईश विधान

63 साधना शताब्दी—विशिष्ट लेखमाला

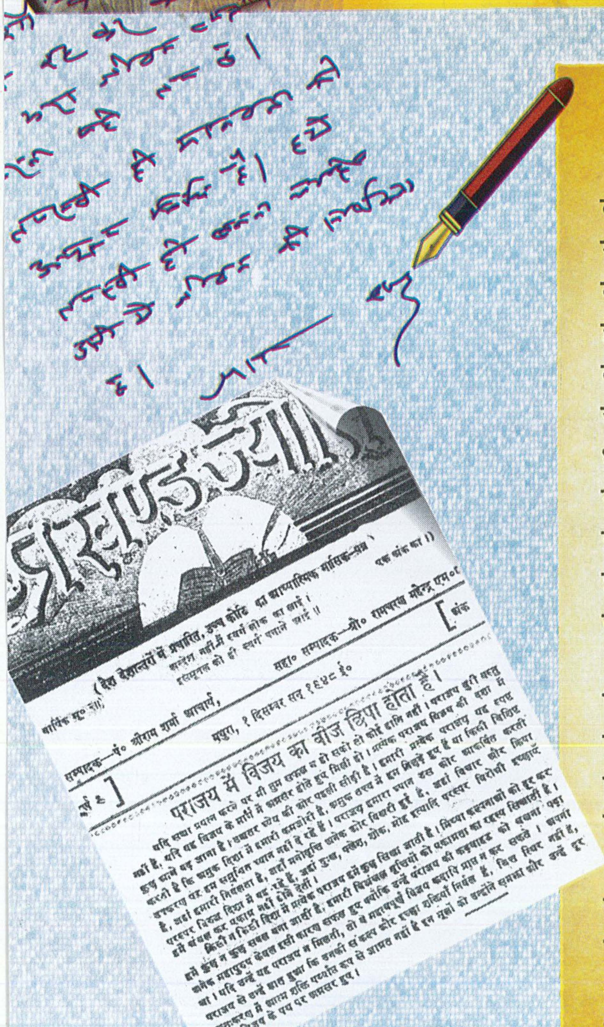

पराजय में विजय का बीज छिपा होता है

"यदि सदा प्रयत्न करने पर भी तुम सफल न हो सको तो कोई हानि नहीं। पराजय बुरी वस्तु नहीं है, यदि वह विजय के मार्ग में अग्रसर होते हुए मिली हो, प्रत्येक पराजय विजय की दिशा में कुछ आगे बढ़ जाना है, उच्चतर ध्येय की ओर पहली सीढ़ी है। हमारी प्रत्येक पराजय यह स्पष्ट करती है कि अमुक दिशा में हमारी कमजोरी है, अमुक तत्त्व में हम पिछड़े हुए हैं या किसी विशिष्ट उपकरण पर हम समुचित ध्यान नहीं दे रहे हैं। पराजय हमारा ध्यान उस ओर आकर्षित करती है, जहाँ हमारी निर्बलता है, जहाँ मनोवृत्ति अनेक ओर बिखरी हुई है, जहाँ विचार और क्रिया परस्पर विरुद्ध दिशा में बढ़ रहे हैं, जहाँ दु:ख, क्लेश, शोक, मोह इत्यादि परस्पर विरोधी इच्छाएँ हमें चंचल कर एकाग्र नहीं होने देतीं।

किसी-न-किसी दिशा में प्रत्येक पराजय हमें कुछ सिखा जाती है। मिथ्या कल्पनाओं को दूर कर हमें कुछ-न-कुछ सबल बना जाती है। हमारी विशृंखल वृत्तियों को एकाग्रता का रहस्य सिखाती है। अनेक महापुरुष केवल इसी कारण सफल हुए; क्योंकि उन्हें पराजय की कड़ुआहट को चखना पड़ा था। यदि उन्हें यह पराजय न मिलती, तो वे महत्त्वपूर्ण विजय कदापि प्राप्त न कर सकते। अपनी पराजय से उन्हें ज्ञात हुआ कि उनकी संकल्प और इच्छा शक्तियाँ निर्बल हैं, चित्त स्थिर नहीं है, अंत:करण में आत्मशक्ति पर्याप्त रूप से जाग्रत नहीं है, इन भूलों को उन्होंने समझा और उन्हें दूर करके विजय के पथ पर अग्रसर हुए।"

— श्रीराम शर्मा आचार्य

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
बिरला मंदिर के सामने मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2972449
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
समय—प्रातः 10 से सायं 6 तक
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

वर्ष	:	87
अंक	:	12
दिसंबर	:	2023
मार्गशीर्ष-पौष	:	2080
प्रकाशन तिथि	:	01.11.2023

वार्षिक चंदा

भारत में	:	300/-
विदेश में	:	2800/-
आजीवन (बीसवर्षीय)		
भारत में	:	6000/-

महाकाल

महाकाल का अर्थ समय व काल की सीमा से परे एक ऐसी प्रचंड परोक्ष सत्ता से है, जो सृष्टि के सुसंचालन के दायित्व का निर्वहन करती है। अराजकता, अवांछनीयता का निराकरण इसी सत्ता के हाथों से होता है। महाकाल एक ऐसे दैवी प्रवाह का नाम है, जो समय-समय पर प्रतिकूलताओं को नष्ट करने एवं अनुकूलताओं को अवतरित करने के लिए गतिशील हो जाता है।

परमपूज्य गुरुदेव ने उल्लेख भी किया है कि 'जब लोकमानस असंतुलित हो जाता है, तब मंगलमय शिव को रौद्ररूप धारण करना पड़ता है। उनके तांडव की थिरकन में सब अनर्गल, अनुपयुक्त एवं अशुभ नष्ट हो जाता है और उनका दंड-विधान ही मनुष्य को दुर्जनता का पथ छोड़कर सज्जनता अपनाने के लिए प्रेरित करता है।'

सतयुग की वापसी सुनिश्चित है। चेतना के रूप में प्रज्ञावतार का, सद्बुद्धि का प्रवाह प्रारंभ हो चुका है और यह सब उन्हीं महाकाल की योजना का, युग प्रत्यावर्तन-प्रक्रिया का अंग है—जो इस महाअभियान के सूत्रधार हैं। आइए! उनके लीला सहचर बनने की तैयारी हम सभी कर लें। ❑

►'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◄

विषय सूची

- आवरण—1 1
- आवरण—2 2
- महाकाल 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  स्वयं को समग्रता से जान लेना है अध्यात्म 5
- **पर्व विशेष—गीता जयंती**
  कर्मफल का शाश्वत सिद्धांत 7
- समर्पण से सिद्धि की ओर 9
- आत्मिक पुरुषार्थ का पथ 12
- बनें अध्यात्म पथ के सच्चे राही 13
- ध्यान से आनंद की ओर 16
- मुक्ति का द्वार 20
- समाधानपरक आध्यात्मिक पथ 22
- मन:स्थिति बदले तो परिस्थिति बदले 24
- **पूज्य गुरुदेव जैसा मैंने देखा-समझा—15**
  सघन आत्मीयता का विकास 26
- बड़ी अद्भुत है आचार्य शंकर की केदारधाम यात्रा 28
- सादा जीवन-उच्च विचार 31
- पुलिस अदालत है आसान, किंतु अटल है ईश विधान 34
- भारतीय संस्कृति सार्वभौम और सनातन 37
- प्लास्टिक कचरे की विभीषिका और समाधान की राह 40
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—176**
  प्रज्ञावतार-युगावतार 43
- **युगगीता—283**
  ॐ तत्-सत् है परमात्मा रूप 47
- विज्ञान एवं अध्यात्म का समन्वय 49
- **परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी**
  अनुदान और वरदान (उत्तरार्द्ध) 51
- **विश्वविद्यालय परिसर से—222**
  ज्ञान-विज्ञान का केंद्र बना विश्वविद्यालय 59
- **साधना शताब्दी—विशिष्ट लेखमाला**
  साधना शताब्दी : शतवर्षीय तप-साधना—संकल्प से संपूर्णता तक 63
- सच्चा जिसने किया समर्पण (कविता) 66
- आवरण—3 67
- आवरण—4 68

आवरण पृष्ठ परिचय

"युद्ध क्षेत्र में भगवान के मुख से निकली सबके लिए दिव्यवाणी"

दिसंबर, 2023 एवं जनवरी 2024 के पर्व-त्योहार

शुक्रवार	08 दिसंबर	उत्पत्ति एकादशी
सोमवार	18 दिसंबर	सूर्य षष्ठी
शुक्रवार	22 दिसंबर	मोक्षदा एकादशी 'स्मा.'
शनिवार	23 दिसंबर	गीता जयंती/मोक्षदा एकादशी 'वै.'
सोमवार	25 दिसंबर	क्रिसमस
रविवार	07 जनवरी	सफला एकादशी
शुक्रवार	12 जनवरी	स्वामी विवेकानंद जयंती/राष्ट्रीय युवा दिवस
रविवार	14 जनवरी	मकर संक्रांति
मंगलवार	16 जनवरी	सूर्य षष्ठी
बुधवार	17 जनवरी	गुरु गोविंद सिंह जयंती
रविवार	21 जनवरी	पुत्रदा एकादशी
मंगलवार	23 जनवरी	नेताजी सुभाष चंद्र बोस जयंती
शुक्रवार	26 जनवरी	गणतंत्र दिवस
सोमवार	29 जनवरी	संकष्ट चतुर्थी
मंगलवार	30 जनवरी	शहीद दिवस

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। —*संपादक***

विशिष्ट सामयिक चिंतन

स्वयं को समग्रता से जान लेना है अध्यात्म

यह मनुष्य का जीवन जो हम लोगों को एक सौभाग्य के रूप में प्राप्त हुआ है, वह एक ऐसा अवसर है, जहाँ से अनंत प्रकाश की यात्रा प्रारंभ हो सकती है।

भगवान कृष्ण जब श्रीमद्भगवद्गीता को कहने के क्रम में अपना विराट रूप अर्जुन को दिखाते हैं तो गीताकार ने उस दृश्य के लिए कहा है—

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः॥

भावार्थ में कहें तो यह कह सकते हैं कि यदि आकाश में हजारों सूर्य भी एक साथ उदित हो जाएँ तो उन सबका जो सम्मिलित प्रकाश है, वो भी मिलकर परमात्मा के उस प्रकाश की बराबरी कर पाने में समर्थ नहीं था।

अब कल्पना करके देखें कि उस अनंत, अतुलनीय, अपरिमित प्रकाश के एक अंश के रूप में, परमात्मा के एक अंश के रूप में, भगवान के एक अंश के रूप में हम और आप जन्मे हैं, परंतु यदि हम अपने जीवन की यात्रा मात्र किलकारी मारने से लेकर चिता पर जलने तक सीमित मानकर बैठ जाएँ तो फिर हमारे भीतर का परमात्मा तो अभिव्यक्त नहीं हो पाता, परंतु हमारे भीतर का पशु अवश्य जाग उठता है।

उस स्थिति में पेट भरने एवं परिवार बड़ा कर लेने के अतिरिक्त जीवन का कोई अन्य भी उद्देश्य हो सकता है—यह फिर इनसान समझ ही नहीं पाता।

ऐसे जीवन की यात्रा मात्र जलने, कुढ़ने, चिढ़ने, तड़पने में ही नष्ट हो जाती है। व्यक्ति यह भूल ही जाता है कि मनुष्य का जीवन वस्तुस्थिति में एक अवसर के रूप में हमको मिला है। जो इस अवसर का सही, सार्थक व सम्यक उपयोग करना जान जाते हैं, उनके जीवन की यात्रा उनको परमात्मा तक ले जाती है। सच पूछा जाए तो इसके अतिरिक्त फिर जीवन का और उद्देश्य ही क्या है?

यदि हम सब जान गए, पर स्वयं को न जान सके तो जो भी जाना वो व्यर्थ ही है, मूल्यविहीन है, निरर्थक है। अपने को जानने की यात्रा ही अध्यात्म की यात्रा है और स्वयं के भीतर छिपी हुई, परंतु सोई हुई शक्तियों को जगाने का जो विज्ञान है, वो अध्यात्म का विज्ञान है।

हमें ऐसा लगता है कि हम अपने को जानते हैं, पर सच ऐसा नहीं है। अपने को जानने का मतलब यह जानना नहीं होता कि हमारे रिश्तेदार कौन हैं, दोस्त कौन हैं, हमारा कैरियर क्या बनना चाहिए; बल्कि ये होता है कि अपने व्यक्तित्व के ऊपर हम संपूर्ण स्वामित्व कैसे स्थापित कर सकते हैं।

स्वयं को जानने का मतलब औरों का जो हमारे प्रति मंतव्य है, जिसे हम पब्लिक ऑपिनियन कह करके पुकारते हैं—उसको जानना नहीं है; बल्कि अपने मन पर, इंद्रियों पर पूर्ण वशीकार के भाव को स्थापित कर लेना है।

यदि हम सच में स्वयं को जानते तो हमारे मन में एक भी विचार ऐसा न आता जिसको कि हम नहीं आने देना चाहते, परंतु ऐसा होता कहाँ है? हमें खुद को भी नहीं पता कि कब-कहाँ-से, कौन-सा विचार प्रकट होएगा और हमारे मन की शांति को छीनकर चला जाएगा।

पड़ोसी की नई गाड़ी आते ही हमारी गाड़ी हमें पुरानी लगने लगती है। दूसरे को नौकरी में पदोन्नति मिलते ही हमें हमारी नौकरी छोटी लगने लगती है। जीवन अनजाने में ही एक प्रतिस्पर्धा में बदल जाता है; क्योंकि हमारा मन बड़ा ही चंचल एवं असंतुष्ट है।

प्रश्न उठता है कि मन आखिर इतना चंचल क्यों है तो उसका एक कारण तो यह है कि मन है तो एक इंद्रिय, एक उपकरण, परंतु हम उसको मालिक बनाकर बैठे हैं। जो हम नहीं भी सोचना चाहते होंगे, वो भी मन सोचता है। जो हम नहीं भी करना चाहते होंगे, वो भी मन करता है। वह न किसी की सुनता है, न समझता है; क्योंकि वह था तो इंद्रिय, परंतु हमने संपूर्ण व्यक्तित्व का एकाधिकार उसको दे दिया है।

कौन चाहता है कि मन में कामुकता के विचार आएँ? कौन चाहता है कि मन क्रोध की ज्वालाओं से दग्ध हो? कौन चाहता है कि मन ईर्ष्या और द्वेष से विकल हो? चाहता तो कोई भी नहीं, परंतु आदत ऐसी पड़ चुकी है कि मन जैसा कराना चाहता है, वैसा हम करते हैं; क्योंकि हमने एक गलती कर दी। गलती यह कर दी कि जो किरायेदार बनकर के आया था, उसे घर की चाबियाँ हमने पकड़ा दी हैं और अब शिकायत करते हम घूमते हैं कि वो घर खाली नहीं कर रहा।

स्वाभाविक है कि मन की चंचलता, व्यक्तित्व में अस्थिरता को, असंतुलन को जन्म देती है। इन सब असंतुलन के कारणों के मध्य में संतुलन को लाना, अपने मन पर संपूर्ण स्वामित्व को लाना, जो हम चाहें वो मन सोचे—यह एक तरह से व्यक्तित्व के रूपांतरण की दिशा में पहला, परंतु महत्त्वपूर्ण पड़ाव है।

मन के ऊपर एकाधिकार को स्थापित किए बिना आध्यात्मिक यात्रा पूर्णरूपेण अधूरी ही रह जाती है। यह सही तरह से हो इसके लिए जरूरी है कि हम स्वयं से झूठ बोलना बंद करें। परमपूज्य गुरुदेव ने इसे निष्पक्ष आत्मसमीक्षा का नाम दिया है। गलती हो जाना बड़ी बात नहीं है, पर गलती को सही समझकर उसी पर अड़े रहना—व्यक्तित्व के पतन का द्वार बन जाता है।

अध्यात्म अपने आप को समग्र रूप से जान लेने का नाम है और ऐसे में अपने आप को पूरी तरह से जान लेना सही है कि क्या हमारे लिए अच्छा है और क्या बुरा? जो आज बुरा है, वो कल अच्छे में बदल सकता है, पर तभी; जब हम उसे बुरे रूप में देखना प्रारंभ करते हैं।

इसके साथ यह भी सत्य है कि हमारे अंत:करण में आध्यात्मिक उत्कर्ष के प्रति गहन श्रद्धा का भाव हो। जो व्यक्तित्व में बैठी हुई गहरी बुराइयाँ हैं, जन्म-जन्मांतरों से वहीं धँसी हुई हैं, उनको अकेले पुरुषार्थ से दूर कर पाना असंभव नहीं तो दुष्कर तो अवश्य होता है। यदि ऐसे में हृदय में श्रद्धा का भाव हो तो यह कार्य सहजता से संभव हो जाता है।

श्रद्धा का अर्थ सरल है—भगवान के प्रति, परमात्मा के प्रति, गुरुदेव के प्रति गहन भरोसे का, विश्वास का भाव। ये सारे तत्त्व मिलकर आध्यात्मिक व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। स्वयं को समग्र रूप से जान लेना ही अध्यात्म है और हमें इसी यात्रा पर आगे बढ़ने के लिए स्वयं को तैयार कर लेना चाहिए। ❑

उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥

अर्थात—मनोरथ उद्यमी व्यक्ति के ही सफल होते हैं। मृग स्वयं चलकर सोते हुए सिंह के मुँह में नहीं जाता, उसे भी इस हेतु प्रयास करना पड़ता है।

पर्व विशेष—गीता जयंती

कर्मफल का शाश्वत सिद्धांत

श्रीमद्भगवद्गीता भगवान के मुख से निकला एक ऐसा दिव्य संदेश है, जिसके प्रत्येक श्लोक में, प्रत्येक अध्याय में जीवन को समग्रता से जीने का संदेश प्रदान किया गया है। गीता में से निस्सृत हुए अगणित दिव्य संदेशों में सर्वाधिक महत्त्व का संदेश कर्मफल सिद्धांत का एवं उसको ध्यान में रखकर निष्कामभाव से कर्म करने का संदेश है।

कर्मफल का सिद्धांत ऐसा अविचल व शाश्वत है कि उसे मानने या न मानने वालों—प्रत्येक को, उसके अनुरूप परिणाम को प्राप्त करने के लिए तैयार रहना पड़ता है। इस सृष्टि का निर्माण किसी के व्यक्तिगत शौक को पूर्ण करने के लिए नहीं किया गया है, वरन इसके संचालन के लिए एक सुनियोजित व्यवस्था की शृंखलाओं की कड़ी है और उस शाश्वत अनुशासन का उल्लंघन करने की छूट किसी को भी नहीं है।

कर्मफल का सिद्धांत, एक ऐसा ही सिद्धांत है—जिसके अनुसार परिणाम पाने के लिए, हर प्राणी को विवश होना पड़ता है। हमारे द्वारा अतीत में किए गए कर्म, हमारा वर्तमान बनाते हैं और वर्तमान में हमारे द्वारा किए जा रहे कर्म, हमारे भविष्य की आधारशिला रखते हैं।

जैसा बीज बोया जाता है, वैसा ही फल निकलकर के आता है—इसमें किसी कुतूहल या आश्चर्य की संभावना ही कहाँ है? यदि विगत समय में हमसे अनर्गल, अशुभ कर्म हुए हैं तो उनके परिणामों को आज, उसी रूप में स्वीकार करने के लिए हमें तत्पर रहना चाहिए। वर्तमान का जो भी स्वरूप है, उसका वैसा निर्माण होने के पीछे हमारे पूर्वकृत कर्मों की ही भूमिका है।

कुछ कर्म अपना फल तुरंत दे जाते हैं तो कुछ के परिणाम समय साध्य हैं। पढ़ाई शुरू करने वाला बालक, एक दिन में ही विश्वविद्यालय का प्रोफेसर नहीं बन जाता। व्यायामशाला जाने वाला युवक, घंटे भर में ही मास्टर चंदगीराम बनकर नहीं निकलता। इसके विपरीत आग में हाथ देने वाले तुरंत झुलस जाते हैं—उसके लिए लंबे समय तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती है।

कुछ कार्य ऐसे होते हैं—जो तुरंत फल दे जाते हैं तो कुछ का परिणाम, प्रतीक्षा करने पर मिलता है। जो कर्म अपने परिणाम समय के साथ देकर जाते हैं—उन्हें देखकर अनेकों लोग कर्मफल सिद्धांत पर अविश्वास व्यक्त करते हैं। अच्छे काम करने वाले सोचने लगते हैं कि हमारे अच्छे कार्यों का फल हमें क्यों नहीं मिल रहा है तो बुरे कार्य करने वाले, अपने कर्मों का कोई हाथोंहाथ बुरा परिणाम न मिलते देख—ऐसा सोचते हैं कि हमारा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

तत्काल फल न मिलने की व्यवस्था के पीछे भगवान की बनाई दूरदर्शिता व विवेकशीलता की व्यवस्था है। यदि असत्य बोलते ही मुँह फट जाता, चोरी करते ही हाथ कट जाते तो मनुष्य को आत्मप्रेरणा के आधार पर, जीवन-परिवर्तन का मौका ही नहीं मिलता और फिर बुरे ही कर्म क्यों—अच्छे कर्म करने का तात्कालिक लाभ मिलता तो सारा पुण्य, मिनटों में खतम हो जाता और शेष जीवन, मात्र दंड भुगतने में जाता।

मनुष्य की दूरदर्शिता विकसित करने एवं सही-गलत की सोच रखने के पीछे परमात्मा का आशय इतना ही था कि मनुष्य यह देख-सुन, सोच-समझकर जीवन को समझदारी के साथ जिए, अनैतिक क्रियाकलापों से बचे, दुष्प्रवृत्तियों से जूझने का सत्साहस अपने भीतर पैदा करे और इस संग्राम में जो चुनौतियाँ-परेशानियाँ आएँ, उन्हें अपनाने का, धैर्यपूर्वक सहन करने का जज्बा अपने भीतर विकसित करे।

कर्मों को फलित होने में, उनका परिपाक होने में समय लगता है। इनकी जड़ें अंतरंग की गहराई में होती हैं और इसीलिए उनके शुभ या अशुभ प्रतिफल, देर से मिलते हैं व लंबी अवधि तक रहते हैं। यही कारण है कि कभी-कभी इनका परिणाम मिलने में जन्म-जन्मांतरों का समय लग जाता है।

कर्मों के बीज, मनुष्य के अंतःकरण में स्थित होते हैं। भगवान ने मनुष्य के अंतःकरण को नैसर्गिक रूप से दिव्य तत्त्वों से सुशोभित करके भेजा है, स्नेह, सौजन्य, दया, करुणा, मानवता जैसे गुण व सत्प्रवृत्तियाँ ही मानवीय अंतःकरण की सामान्य संरचना बनाती हैं। यदि इस क्षेत्र में दुष्प्रवृत्तियाँ या निकृष्टताएँ प्रवेश करने का प्रयास करती हैं तो हमारी आत्मा बगावत कर उठती है।

जैसे—रक्त में विजातीय तत्त्वों के, बैक्टीरिया, वायरस के प्रवेश करते ही—हमारी प्रतिरोधक क्षमता उनसे लड़ मरने को तैयार हो जाती है—वैसे ही, अंतःकरण की दैवी चेतना भी इन आसुरी दुष्प्रवृत्तियों को मानवीय व्यक्तित्व में जड़ जमाने की छूट नहीं देना चाहती। फलस्वरूप एक देवासुर संग्राम छिड़ उठता है—इसे ही अंतर्द्वंद्व कह सकते हैं। यही अंतर्द्वंद्व मनोवैज्ञानिकों की भाषा में बिखरे हुए व्यक्तित्व का कारण बनता है।

एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं। आग और पानी साथ-साथ नहीं रह सकते। भला व बुरा भी एक स्थान पर नहीं रह सकते। आत्मा, दुष्प्रवृत्तियों को एक क्षण के लिए भी स्वीकार नहीं करती है। इसीलिए गलत करते समय ग्लानि होती है, आँखें नीची होती हैं, दिल धड़कता है और हाथ-पैर काँपते हैं।

यह एक तरह से अंतरात्मा का हमारे लिए संदेश है कि पापों के परिणाम से कोई बच नहीं सकता। इन्हें करके कोई एक बार शासकीय दंड-व्यवस्था से बच जाए, परंतु मानसिक संतापों व शारीरिक रोगों से उसे कौन बचा सकता है? इसलिए जो आध्यात्मिक प्रगति के इच्छुक होते हैं, वो इन दुष्प्रवृत्तियों व दुष्कर्मों का पहले सफाया करते हैं।

कर्मफल विधान अडिग है। जब तक अंतःकरण में, कुकर्मों की छाया है, तब तक हमें दिव्य सत्ता का सूर्य दिखाई नहीं पड़ता। सबसे पहले उन कुकर्मों की कालिमा से बाहर निकलने की आवश्यकता होती है।

हमारा प्रयोजन समझने में किसी को भूल नहीं करनी चाहिए। हम प्रचंड आत्मशक्ति की एक ऐसी गंगा को लाने जा रहे हैं, जिससे अभिशप्त सगरसुतों की तरह आग में जलते और नरक में बिलखते जन-समाज को आशा और उल्लास का लाभ दे सकें। हम लोकमानस को बदलना चाहते हैं। —*परमपूज्य गुरुदेव*

इसलिए आज की हमारी दुःखद परिस्थितियों का मूल्यांकन हमारी अतीत की भूलों पर दृष्टिपात के साथ किया जाना चाहिए, ताकि उन्हें धैर्यपूर्वक सहन करने की, स्वीकार करने की क्षमता, हमारे भीतर विकसित हो सके।

इसी प्रकार अच्छा घटित होने पर, चने के झाड़ पर चढ़ जाने के बजाय—पूर्वकृत शुभ कर्मों को धन्यवाद देते हुए जीवन में सदा अच्छा करने की सोचना चाहिए। इसी मार्ग का पालन करने वाले जीवन के हर क्षेत्र में उन्नति व उत्कर्ष के प्राप्तकर्त्ता बनते हैं। यही गीता जयंती का संदेश है। ❑

समर्पण से सिद्धि की ओर

अपने आराध्य व गुरु के प्रति साधक के मन में यदि सच्ची श्रद्धा व भक्ति हो तो साधक, शिष्य निस्संदेह साधना के शीर्ष तक पहुँचकर भगवत्कृपा व गुरुकृपा का अधिकारी बन जाता है। वहीं श्रद्धा व भक्ति के अभाव में साधक की, शिष्य की साधना सफल नहीं हो पाती, पूर्ण नहीं हो पाती।

भगवान की नजर में, गुरु की नजर में सभी साधक, शिष्य, भक्त समान ही होते हैं, पर अपनी सच्ची साधना, भक्ति व निश्छल प्रेम के कारण कोई साधक या शिष्य अपने आराध्य व गुरु की कृपा का विशेष पात्र बन जाता है तो वहीं सच्ची साधना व श्रद्धा के अभाव में कोई साधक व शिष्य अपने आराध्य का, गुरु का कृपापात्र, प्रियपात्र नहीं बन पाता।

अपनी कमियों को दूर कर अपने आराध्य व गुरु का प्रियपात्र, कृपापात्र निस्संदेह कोई भी साधक, कोई भी शिष्य अवश्य ही बन सकता है। पर समस्या तब खड़ी हो जाती है, जब हम अपनी कमियों को दूर करने के बजाय साधना में सफल हो रहे, अपने गुरु के प्रियपात्र बन रहे अन्य साधकों, शिष्यों व भक्तों से ईर्ष्या करने लगते हैं।

उनसे प्रेरणा पाने के बजाय हम उनसे ईर्ष्या करने लगते हैं। इससे हमारी साधना तो बाधित होती ही है, हम अपने आराध्य, अपने गुरु के साथ-साथ अपनी नजरों से भी गिरने लगते हैं। तब महान गुरु से जुड़े होने के बावजूद हम साधना में अपेक्षित सफलता प्राप्त नहीं कर पाते हैं और उलटे अपने आराध्य, अपने गुरु पर ही पक्षपाती होने की शंका, आशंका, कुशंका आदि के शिकार होते हैं और पाप के भागी बनते हैं।

इस संबंध में हमें ऐसे कई दृष्टांत पढ़ने व सुनने को मिलते हैं। एक ऐसा ही दृष्टांत आचार्य शंकर के शिष्यों से जुड़ा हुआ है। आचार्य शंकर के कई शिष्य उनके साथ ही रहते थे। आचार्य शंकर उन शिष्यों व साधकों को निरंतर योग-साधना का उपदेश दिया करते थे।

आचार्य शंकर अपने द्वारा रचित ग्रंथों व भाष्यों को अपने शिष्यों को पढ़ाते थे और उन्हें साधना करने को प्रेरित करते थे, जिससे कि वे शास्त्रों में वर्णित साधना से होने वाले लाभ को स्वयं के जीवन में अनुभव कर सकें। भाष्य पाठ, शास्त्र मीमांसा और योग-साधना के उपदेश से शंकराचार्य के शिष्यों के मन उच्च आध्यात्मिक भावना में लीन रहने लगे थे।

उन सभी शिष्यों में सनंदन नाम का शिष्य अधिक उच्चकोटि का साधक था। वह आचार्य शंकर की सेवा में सदैव तत्पर रहता था। उसकी सच्ची गुरुभक्ति व साधना के कारण शंकराचार्य भी उससे अधिक प्रेम करते थे। फलस्वरूप अन्य शिष्य सनंदन से ईर्ष्या करने लगे और हमेशा सनंदन को शंकराचार्य की दृष्टि में नीचा दिखाने की फिराक में रहने लगे।

एक दिन शंकराचार्य स्नानादि नित्यकर्मों से निवृत्त होकर अपने शिष्यों को साधना संबंधी विशेष उपदेश दे रहे थे, जिससे कि सभी शिष्यों को आध्यात्मिक क्षेत्र में पूर्णता प्राप्त हो सके, पर कई शिष्य आचार्य शंकर के बार-बार उपदेश सुनने के बाद भी ईर्ष्या-द्वेष नहीं छोड़ सके थे। शंकराचार्य की सनंदन पर विशेष कृपा है, अधिक कृपा है; ऐसा सोचकर वे सनंदन से ईर्ष्या करने लगे थे।

अंतर्यामी आचार्य शंकर ने अपने शिष्यों के मन में सनंदन के प्रति उभर रहे ईर्ष्या के भाव को भाँप लिया था। इसलिए वे उनके मन से ईर्ष्या भाव निकालने की युक्ति पर विचार करने लगे। अस्तु वे शिष्यों को ब्रह्मसूत्र, द्वादश उपनिषद्, भगवद्गीता, विष्णु सहस्रनाम आदि ग्रंथों के नित्य स्वाध्याय के महत्त्व को बताते हुए यह समझने लगे कि धारणा, ध्यान, एकाग्रता व सच्ची लगन से साधक कुछ भी प्राप्त कर सकता है; इसमें जरा भी संदेह नहीं है।

उस समय संयोग से वहाँ सनंदन नहीं था। वह किसी आवश्यक कार्य से अलकनंदा के दूसरे तट पर गया हुआ था। अलकनंदा पर पुल बना हुआ था। पुल पर से ही दूसरे तट पर जाना होता था; क्योंकि अलकनंदा में तो हिमखंड पड़े रहते थे, जिससे अलकनंदा में तैरकर दूसरे तट पर जा पाना असंभव-सा जान पड़ता था।

शंकराचार्य के शिष्य अपने गुरु से साधना संबंधी उपदेश सुन रहे थे, पर उनके मन में और ही विचार आ रहे थे। वे सोच रहे थे कि सनंदन आज गुरुसेवा छोड़कर अलकनंदा के दूसरे तट पर क्यों गया है, इसमें अवश्य ही कोई भेद है। गुरुदेव हमारे से अधिक सनंदन को ही योग्य समझते हैं। गुरुदेव की जितनी कृपादृष्टि सनंदन पर है, उतनी कृपादृष्टि हम पर नहीं है।

शंकराचार्य शिष्यों के मन में उभर रहे भावों को भली भाँति जान रहे थे और विचार कर रहे थे कि सनंदन इन सबसे श्रेष्ठ है—ये नादान यह नहीं जानते, नाहक उससे ईर्ष्या करते हैं।

आचार्य शंकर ने विचार किया कि इन शिष्यों के मन से ईर्ष्या के भाव नष्ट करने ही होंगे और इस हेतु सनंदन की श्रेष्ठता की परीक्षा लेनी होगी। जब शिष्यों ने ध्यान-साधना के विषय में उनसे उपदेश पा लिया तब अचानक ही शंकराचार्य ने सनंदन को पुकारा—''सनंदन! सनंदन!! तुम कहाँ हो, यहाँ आ जाओ।''

इस पर वहाँ उपस्थित शिष्यों ने कहा—''गुरुदेव! सनंदन तो अलकनंदा के दूसरे तट पर किसी कार्य से गया है। वह यहाँ नहीं है। आप हमें बताइए, क्या कार्य करना है?'' पर शंकराचार्य ने उन शिष्यों की बात अनसुनी कर दी और फिर बाहर की ओर मुख करके सनंदन को आवाज दी—''सनंदन! सनंदन!! तुम कहाँ हो, तुम आ जाओ। सनंदन जल्दी आ जाओ।''

''न जाने गुरुजी को क्या हो गया है''—शिष्यों ने एकदूसरे की ओर देखते हुए कहा। सनंदन बहुत दूर है, गुरुजी की आवाज वहाँ तक नहीं पहुँच सकती। पर सनंदन में साधना और गुरुकृपा से इतनी सिद्धि और शक्ति आ गई थी जिसके कारण अपने गुरु शंकराचार्य की इतनी दूर की आवाज भी उसने सुन ली। उसे अंत:प्रेरणा हुई कि उसके गुरु उसे आवाज दे रहे हैं। गुरु की आवाज उसके कानों में गूँजने लगी—'सनंदन आ जाओ! सनंदन तुम कहाँ हो?'

सनंदन ने सोचा अवश्य ही गुरुजी को कोई विशेष कार्य है। इसी कारण वे मुझे शीघ्र बुला रहे हैं, पर अलकनंदा के पुल पर से जाने में तो अधिक समय लगेगा और अलकनंदा में तैरकर भी नहीं जा सकते; क्योंकि अलकनंदा की धारा बहुत तेज है और अलकनंदा के अंदर हिमखंड पड़े हैं, जिसके कारण शरीर को ठंढ और चोट भी लग सकती है, मगर इस समय यह क्या सोचना। गुरुजी ने जल्दी बुलाया है तो मुझे जल्दी ही जाना चाहिए।

यह सोचते हुए सनंदन अलकनंदा के हिमखंड से भरे गहरे अथाह शीतल जल में कूद पड़ा। पास में खड़े श्रद्धालु, साधक, शिष्य चिल्लाए—''सनंदन नदी में हिमखंड पड़े हैं, अथाह शीतल जल है, उसके अंदर मत जाओ।'' पर सनंदन ने किसी की नहीं सुनी। उसे अपने गुरुजी की आवाज ही अपने कानों में गूँजती हुई सुनाई पड़ रही थी—''सनंदन तुम कहाँ हो, तुम आ जाओ।''

सनंदन ने अपने प्राणों की परवाह किए बिना अलकनंदा की विशाल जलराशि में छलाँग लगा दी। वह तैरकर आगे बढ़ने लगा। बरफ के टुकड़े और शीतल जल उसके शरीर को सुन्न कर रहे थे, पर वह तैरता हुआ दूसरे तट पर जाने का यत्न कर रहा था।

सच्ची लगन से साधना में तत्पर साधक को प्रकृति भी अपना यथायोग्य सहयोग देती है। प्रकृति भी परिस्थितिगत अनुकूलता प्रदान करती है। अचानक अलकनंदा के अंदर कमल पुष्प तैरने लगे। सनंदन ने उन पर पाँव रखकर नदी पार कर ली और तेजी से भागता हुआ आकर गुरु के चरणों में गिर पड़ा। "क्या आज्ञा है गुरुदेव!"—सनंदन ने शंकराचार्य के चरण छूते हुए कहा। "दूर होने के कारण आने में थोड़ा बिलंब हो गया गुरुदेव! इस विलंब के लिए मुझे क्षमा करें।"

"तुम ठीक समय पर आ गए सनंदन।" कहते हुए शंकराचार्य ने दूसरे शिष्यों की ओर देखा, वे सभी लज्जा से गरदन झुकाए बैठे थे। "देखा तुमने!" शिष्यों की ओर देखते हुए शंकराचार्य ने कहा—"क्या तुममें ऐसा कार्य करने का साहस है, क्या तुम ऐसा कार्य कर सकते हो, जिसमें प्राण संकट में आ जाएँ?"

"गुरुनिर्दिष्ट साधना में इसकी (सनंदन की) सच्ची लगन ने ही उसे यह सिद्धि दिलाई है। इतने प्रवाह से बहने वाली, हिमखंडों से भरी, शीतल जल की नदी अलकनंदा को सनंदन पार करके यहाँ आ गया।" सनंदन के सिर पर प्यार से हाथ फेरते हुए शंकराचार्य ने कहा—"इसकी सच्ची साधना, श्रद्धा, समर्पण व लगन के कारण ही इस पर भगवती की कृपा है।" "क्षमा करें गुरुदेव! सचमुच हम सनंदन की साधना, समर्पण, लगन व गुरुभक्ति की शक्ति से परिचित नहीं थे। हमें खेद है, ऐसे महान साधक, महान शिष्य व महान गुरुभक्त से हमने ईर्ष्या की।"

"मात्र क्षमा माँगने भर से काम नहीं बनेगा साधको! इतनी साधना-तपस्या के पश्चात भी यदि ईर्ष्या का अंकुर हृदय में पनपने लगा तो तपस्या, साधना का सारा परिश्रम व्यर्थ चला जाएगा। सच्चा साधक भूलकर भी कभी दूसरों से ईर्ष्या-द्वेष का भाव नहीं रखता। इसका जीवंत उदाहरण शिष्य सनंदन है। तुम सब इसकी बुराई करते रहे, पर यह कभी किसी की बुराई नहीं करता।"—शंकराचार्य ने मुस्कराते हुए कहा।

सनंदन के सिर पर प्यार से हाथ फेरते हुए उन्होंने अपनी बात आगे बढ़ाई और कहने लगे—"इसके विशेष गुण के कारण ही मैं इसका नाम पद्मपाद रखता हूँ और सभी शिष्यगण इसे पद्मपाद नाम से ही बुलाएँगे।"

शिष्यों को यह ज्ञात हो गया कि सच्ची साधना व गुरुभक्ति से ही साधक को गुरुकृपा प्राप्त होती है और गुरुकृपा से साधक के लिए असंभव कार्य भी संभव हो जाते हैं। शंकराचार्य जैसे महापुरुष का शिष्य बनना, हमें शुभकर्मों के पुण्यफल से ही प्राप्त हुआ है।

पद्मपाद ने अपने गुरु की स्तुति करते हुए उनके चरण छुए और शिष्यों ने शंकराचार्य के चरण छूकर क्षमा माँगी। शंकराचार्य ने सभी के सिर पर प्यार से हाथ फेरकर आशीर्वाद दिया और कहा—"जो मन में ईर्ष्या-भावनाएँ हैं, उन्हें मिटा दो और पद्मपाद जैसे बनने का प्रयत्न करो। तभी तुम्हारा यह दुर्लभ मनुष्य-जीवन सार्थक होगा।"

गुरु के उपदेश को सुनकर सभी शिष्यों के मन में सच्ची साधना करने व गुरुसेवा करने की प्रेरणा जाग उठी। हममें से हरेक साधक-शिष्य पद्मपाद की तरह समर्पण व लगन के द्वारा साधना में सिद्धि व सफलता अवश्य ही प्राप्त कर सकता है। समर्पण से सिद्धि की ओर अग्रसर होने का यही राजमार्ग है, जिस पर चलकर कोई भी साधक सिद्धि को प्राप्त कर सकता है। ❑

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

आत्मिक पुरुषार्थ का पथ

साधना-उपासना उस पुरुषार्थ का नाम है, जिसके माध्यम से आत्मिक विभूतियों को हस्तगत कर पाना हमारे लिए संभव हो पाता है। इस पथ पर चलने वाले अपने जीवन में ऊँचे उठकर अपने गुण, कर्म, स्वभाव एवं दृष्टिकोण को परिष्कृत करते हैं, प्रसुप्त सामर्थ्यों को जगाते हैं एवं आकांक्षाओं, मान्यताओं तथा भावनाओं को उच्चस्तरीय बनाते हैं।

इसके लिए यह आवश्यक है कि जीवसत्ता की अंतरात्मा को छूने वाले परमात्म-अंश को पहचाना जाए एवं उसी को आत्मसात् करने का प्रयत्न किया जाए। उपासना का मूल आधार इसी एक भाव के विकास को मानना चाहिए।

सही पूछें तो उपासना वस्तुतः भावविज्ञान की ऐसी उच्चस्तरीय स्थिति है, जिसमें मन:स्थिति के अनुरूप साधक को अपना माध्यम चुनना होता है। सतत परिष्कार के सोपानों पर चढ़ते हुए अंततः साधक ऐसी आत्मिक अवस्था को उपलब्ध हो जाता है, जहाँ वह परमसत्ता को उत्कृष्ट संवेदनाओं के रूप में अनुभव करता है।

यह सद्भाव भरी आतुरता ही साधनात्मक प्रयास की पराकाष्ठा है। हमारी उपासना सफल हो पा रही है या नहीं ? इसका मानदंड एक ही है और वह यह है कि अपने को अधिकाधिक परिष्कृत बनाने की आकांक्षाओं को जगाना एवं इसके लिए उत्कट अभीप्सा, तीव्र आतुरता को क्रमशः विकसित करना।

ऐसा व्यक्ति फिर स्वयं को विश्व नागरिक मानता है और स्रष्टा के इस उद्यान को और अधिक सुंदर व सुविकसित बनाने के प्रयत्न में जुटता है। जिसके हृदय में आस्तिकता का यह चरम उपस्थित हो पाया, उसी की उपासना सार्थक हुई, ऐसा मानना चाहिए।

इस सत्य को भली भाँति समझ लेने वाला व्यक्ति ही अध्यात्म के पथ का सच्चा पथिक होता है। ऐसा व्यक्ति फिर क्षुद्र से महान और सामान्य से असामान्य बनने की राह पर निकल पड़ता है। आज का युगकर्त्तव्य यही है कि धर्मधारणा व उपासना विज्ञान के सही स्वरूप को जनमानस के सामने रखा जाए एवं उन्हें, उसी दिशा में चलने हेतु प्रोत्साहित किया जाए।

ऐसा किया जा सका तो आर्ष स्तर की ऋषिप्रणीत धर्मचेतना का सच्चे अर्थों में उद्धार संभव हो सकेगा। ❑

परिष्कृत जीवन को परिपुष्ट जीवन कह सकते हैं और पूजा-पाठ को शृंगार। स्वास्थ्य के रहते यदि शृंगार भी सजा लिया जाए तो हर्ज नहीं, पर अकेले शृंगार-सज्जा बनाकर कोई कृषकाय, जरा-जीर्ण, रोगग्रस्त मात्र उपहासास्पद ही बन सकता है। इन दिनों तो लोग शृंगार को ही सब कुछ मान बैठे हैं और स्वास्थ्य की आवश्यकता नहीं समझते।

—परमपूज्य गुरुदेव

बनें अध्यात्म पथ के सच्चे राही

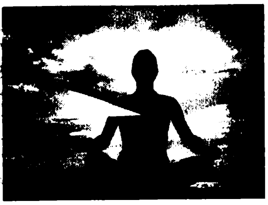

हम दशकों से अध्यात्म पथ के राही हैं, लेकिन जीवन को यदि सार्थकता की अनुभूति से रीता पा रहे हैं, आध्यात्मिक प्रकाश एवं समझ से वंचित देखते हैं तथा जीवन अशांति, कुढ़न और संताप से आकुल है तो मानकर चलें कि हमसे अध्यात्म पथ को समझने में, गुरु के बताए मार्ग को अपनाने में कहीं भूल हो रही है।

वास्तव में अध्यात्म पथ ईश्वर या गुरु से याचना या भीख माँगने की प्रक्रिया नहीं है। अध्यात्म शिष्य-साधक की अभीप्सा से प्रारंभ होता है, जिसका आधार रहता है आत्मश्रद्धा और जीवन का स्पष्ट लक्ष्य रहता है अपने वास्तविक स्वरूप का बोध अर्थात आत्मसाक्षात्कार। यदि हमें यह लक्ष्य स्पष्ट नहीं और हम इस दिशा में नहीं बढ़ रहे, तो फिर हम नाना प्रकार की विडंबनाओं से गुजरने के लिए विवश-अभिशप्त होते हैं।

ऐसे में संशय पग-पग पर घेरे रहता है, जो अध्यात्म पथ पर एक भी कदम आगे बढ़ने नहीं देता। आत्मश्रद्धा के अभाव में ही जीवन आत्मसाक्षात्कार के लक्ष्य से विमुख रहता है। ऐसे में ऋषियों ने जिस आत्मज्ञान को जीवन की सर्वोपरि आवश्यकता बताया है, उससे व्यक्ति वंचित रहता है।

वह बाहरी ज्ञान और सांसारिक कौशल अवश्य बटोरता रहता है, लेकिन सांसारिक गोरखधंधे में उलझा रहता है या फिर धर्म-अध्यात्म के नाम पर सिद्धि, चमत्कार या अन्य उच्चतर प्रलोभनों में कहीं अटक जाता है।

जबकि आत्मश्रद्धा बताती है कि हमें संसार की मोहमाया से बचते हुए ईश्वर की ओर उन्मुख रहना है। सत्य व ज्ञान की ओर बढ़ते हुए तमस् व अज्ञान के पार जाना है। यह बोध रखना है कि संसार और भगवान, दोनों एक साथ नहीं पाए जा सकते। जहाँ राम, वहाँ काम नहीं, जहाँ काम है, वहाँ राम नहीं।

प्रश्न एक ही है कि हम वास्तव में अध्यात्म के प्रति कितना सचेष्ट हैं और इस दिशा में कितना नैष्ठिक प्रयास कर रहे हैं और अध्यात्म जगत् का सत्य है कि यदि हम एक कदम भी ईश्वर की ओर बढ़ाते हैं, तो वह दस कदम हमारी ओर बढ़ाता है लेकिन प्रायः ऐसा हो नहीं पाता; क्योंकि हम संसार को ही परम सत्य मान बैठे होते हैं, जो हमारी समस्या की जड़ है।

दो नावों पर सवार होकर हम एक तत्त्व को पाना चाहते हैं और दो सत्य एक साथ कैसे विद्यमान हो सकते हैं? इसलिए एक शिष्य-साधक के मन में पहले पात्रता का विकास करना होता है, विवेक-वैराग्य के भाव को जाग्रत करना होता है।

इसके अभाव में हम इस संसार को अपना स्थायी आवास मान बैठते हैं और वही हमारा पूरा ध्यान आकर्षित करता है, हमारे मन की सारी शक्तियों को सोख लेता है, हमारी भावनाओं में रम जाता है तथा वैसी ही हमारी सृष्टि बनती जाती है। जबकि ईश्वर व आत्मतत्त्व ही शाश्वत हैं, इसके अतिरिक्त बाकी सब कुछ परिवर्तनशील है।

यह संसार इस शाश्वत के परदे पर चलता चलचित्र मात्र है, नाम-रूप का खेल भर है, ईश्वर की लीलामात्र है, अंतिम सत्य नहीं। यह संसार

आँखें बंद कर सपने देखने जैसा है। आँखें खुलते ही इसकी सारता का बुलबुला फूट जाता है।

ऋषियों का वेद-उपनिषद् काल से स्पष्ट उद्घोष रहा है कि ईश्वर ही एकमात्र सत्य हैं, वे ही सदा रहते हैं। इसी तरह उनका अभिन्न अंश आत्मा ही सत्य है, शाश्वत है और एक शिष्य के लिए गुरु ही इसकी आत्मा और परमात्मा का स्वरूप होता है।

गुरुमुख से निकले वचन ही शिष्य के लिए गुरुमंत्र होते हैं, जिनका वह अटल विश्वास के साथ दामन थामे रहता है और अपने आदर्श का स्तर कभी गिरने नहीं देता और इसी के मानक के अनुरूप स्वयं को कसता, तपाता रहता है, जब तक कि सर्वोच्च सत्य को नहीं पा ले।

इस सत्य की उपेक्षा कर कर्मकांड को ही परम सत्य मानने व उसी को पकड़े-जकड़े रहने पर हम भारी भूल करते हैं और जीवन के सार तत्त्व को भूल जाते हैं। हमारा ज्ञान पुस्तकीय ज्ञान व कथा-प्रवचन तक सीमित रह जाता है, जीवन में उतर नहीं पाता। जबकि महर्षियों के अनुसार, शास्त्रों के शब्द घने जंगल की तरह हैं, जहाँ व्यक्ति के खोने का भय रहता है।

बिना साधना का मात्र पांडित्य जीवन में काम नहीं आता, अग्निपरीक्षा की घड़ियों में यह अपना प्रयोजन सिद्ध नहीं कर पाता। ऐसे में बाल की खाल निकालने वाले तर्क-कुतर्कों में जीवन बीत जाता है और हाथ कुछ सार तत्त्व लगता नहीं। अंतिम आह के साथ आखिर यह जीवन भी नष्ट हो जाता है।

यह कुछ ऐसे ही होता है, जैसे भवन में आग लगी है और विद्वज्जन आग के स्रोत पर बहस कर रहे हैं। पूरा भवन जलकर राख बनने के कगार पर है और विवाद किए जा रहे हैं। हमें धर्म के सार अध्यात्म को समझना होगा, कर्मकांडों की सीमा का एहसास करना होगा व इसके सारतत्त्व को ग्रहण करते हुए आगे बढ़ना होगा। अतः साधक को आत्मतत्त्व के यथार्थ को जानने का प्रयास करना चाहिए। शास्त्रों का सार हृदयंगम करते हुए इन्हें जीवन में धारण करना चाहिए।

शास्त्रों का ज्ञान जीवन में उतर रहा है, इसका परिणाम यह दिखेगा कि जीवन सरल बन रहा है, सच्चाई-भलाई के मार्ग में रस आ रहा है, विद्वत्ता के दंभ-अहंकार से मुक्ति मिल रही है और जीवन के संघर्ष पथ पर योद्धा बनकर आगे बढ़ने का साहस एवं जुझारूपन जाग्रत हो रहा है।

इनके अभाव में व्यक्ति जीवन के यथार्थ से बचता फिरता है, जीवन के सत्य का सामना नहीं कर पाता। कुछ तो इतने आलसी, प्रमादी हो जाते हैं कि धर्म-अध्यात्म के नाम पर सत्य के अतिरिक्त अन्य सब कुछ कर रहे होते हैं। वास्तव में आध्यात्मिक जीवन अपनी कीमत माँगता है कि हम इसे चुकाने के लिए कितना तैयार हैं।

जब लक्ष्य स्थिर कर लिया, गुरु की शरण में आ गए, तो फिर चाहे जो भी कीमत हो, नैष्ठिक साधक बनकर इसे जीना होगा, पूरा करना होगा। अपनी क्षुद्रता, स्वार्थ-अहंप्रधान निम्नवृत्तियों को त्यागने के लिए तैयार रहना होगा; जगत् के गोरखधंधे से बाहर निकलने का साहस करना होगा, जो जन्म-जन्मांतरों के अज्ञानजन्य अभ्यास के रूप में हमें उलझाकर पंगु बना रहा है। कर्मकांडी विडंबनाओं में उलझने के बजाय हमें गुरु द्वारा बताए अध्यात्म पथ का अनुसरण करना होगा।

आध्यात्मिक पथ में जहाँ भावों की पावनता और उदारता को साधना होता है तो वहीं इच्छाशक्ति को सुदृढ़ करते हुए, मन को उच्चतर मार्ग पर ऊर्ध्वगामी भी बनाना होता है। सांसारिक उपलब्धियों

व सुख-भोगों के लिए हम दैत्य की भाँति जिस एकाग्रता तथा इच्छाशक्ति का प्रयोग करते हैं, उन्हें आत्मनोन्मुख करना होता है। यदि हमें अपनी दुर्दशा और भटकी दिशा का थोड़ा-सा भी एहसास हो जाए, तो फिर उसी क्षण हम धर्म और सत्य के मार्ग पर बढ़ चलते हैं।

इसी के चरम पर ईश्वर की कृपा अवतरित होती है, जो साधना को नई गति देती है एवं जिसके अवतरण के आधार पर अहंकार निर्मूल होता है, चित्त का परिष्कार होता है तो आएँ हम धर्म-अध्यात्म के नाम पर चिह्नपूजा या कर्मकांड तक सीमित न होकर, गुरु की वास्तविक इच्छा को जानें, उनके बताए साधना-पथ का प्राणपण से पालन करें, उनकी कृपा का आह्वान करें, फिर देखें उनकी कृपा के साथ आध्यात्मिक सत्य कैसे हमारे जीवन का अंग बनते हैं और हम उनके एक यंत्र के रूप में अपना अकिंचन-सा ही सही, किंतु सार्थक योगदान दे पाते हैं। ❑

एक राजा के तीन पुत्र थे। राजा उन तीनों की योग्यता को परख कर, उसके आधार पर अपने उत्तराधिकारी का चयन करना चाहता था। इसलिए एक दिन राजा ने उन्हें बुलाकर कहा—"जाओ, किसी धर्मात्मा को खोजकर लाओ।" तीनों राजकुमार धर्मात्मा की खोज में निकल पड़े। कुछ दिनों बाद एक पुत्र, एक सेठ को लेकर राजा के पास पहुँचा और बोला—"पिताजी! इन सेठ जी ने नगर में अनेकों धर्मशालाएँ व मंदिर बनाए हैं।" राजा ने सेठ से ऐसा करने का कारण पूछा तो सेठ बोले—"मैंने सुना है कि ऐसा करने से पुण्य मिलता है।" राजा ने उनका सत्कार किया और उन्हें धन देकर विदा किया। दूसरा राजकुमार एक ब्राह्मण को लेकर लौटा और उनका परिचय कराते हुए राजा से बोला—"ये अत्यंत ज्ञानी व तपस्वी हैं।" राजा ने उनसे धर्म की परिभाषा पूछी तो वे बोले—"शास्त्रोक्त कर्म करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है, उसी पथ का पालन धर्म है।" राजा ने उनको भी सम्मानपूर्वक दक्षिणा देकर विदा किया।

तीसरा पुत्र एक गरीब से व्यक्ति को लेकर पहुँचा। राजा के पूछने पर वह बोला—"पिताजी! यह आदमी एक घायल गाय की सेवा कई दिनों से कर रहा था। मुझे लगा कि इसी व्यक्ति के अंदर सही धर्मात्मा होने का भाव है।" राजा ने उस आदमी से पूछा—"तुम धर्म-कर्म का कोई कार्य करते हो?" वह आदमी बोला—"महाराज! मैं एक गरीब किसान हूँ, अनपढ़ हूँ, धर्म-कर्म कुछ जानता नहीं हूँ। हाँ, यदि कोई जरूरतमंद, रोगी, दुःखी, अभावग्रस्त दिख पड़ता है तो यथाशक्ति उसकी मदद अवश्य करता हूँ।" यह सुनकर राजा बोला—"कुछ पाने की आशा किए बिना सच्चे हृदय से दूसरों की सेवा करना ही धर्म है। तुम ही सच्चे धर्मात्मा को लेकर लौटे हो।" वह पुत्र ही राजगद्दी का अधिकारी बना।

ध्यान से आनंद की ओर

महायोगी श्री अरविंद ने यह स्पष्ट किया है कि 'केवल मन आधारित मनुष्य संतुष्ट और समृद्ध नहीं हो सकता। संतुष्टि, समृद्धि और आनंद की प्राप्ति के लिए मनुष्य को मन से आत्मा की ओर जाना होगा। व्यक्तिगत चेतना को दिव्य चेतना से समाहित होना होगा।' वास्तव में यह सत्य है कि मन आधारित जीवन संकुचित जीवन है, संकीर्ण जीवन है।

मन आधारित मनुष्य मन के इशारे पर ही नाचता, गाता, हँसता, रोता और जगत् व्यवहार, लोक-व्यवहार करता है। इसलिए मनुष्य को वास्तविक सुख, शांति, समृद्धि और आनंद की उपलब्धि नहीं हो पाती। शाश्वत सुख-शांति, समृद्धि व आनंद का स्रोत मन नहीं, वरन आत्मा है। इसलिए जब साधना के निरंतर अभ्यास से मन नियंत्रित होकर आत्मा से समाहित हो जाता है, तब मनुष्य को हर पल आत्मसंतुष्टि, आत्मसुख व आत्मिक आनंद की उपलब्धि, अनुभूति होने लगती है।

जब तक मन आत्मा से युक्त नहीं, आत्मा से संचालित नहीं, तब तक वह चंचल और अनियंत्रित ही होता है, फलस्वरूप वह मनुष्य के जीवन में नानाविध द्वंद्वों, दुःखों, कष्टों को आकर्षित और आमंत्रित करता है। फलस्वरूप मनुष्य का जीवन कष्टों और कठिनाइयों से भर जाता है।

सारा खेल ही मन का है। मन के खेल को समझना आवश्यक है। हमारे अचेतन मन में कर्म संस्कारों, स्मृतियों का संसार है और जब तक हमारे मन में यह संसार समाया हुआ है, तब तक हमें शांति, समृद्धि और संतुष्टि नहीं मिल सकतीं। मन में बसा यह संसार बड़ा विचित्र है।

इसमें अनेक कड़ुई और मीठी स्मृतियाँ होती हैं, अच्छे-बुरे कर्मों के संस्कारों का जखीरा है। इसलिए जब हम एकांत में बैठकर शांत चित्त होने का प्रयास करते हैं तो मन में बसा हुआ संसार चलचित्र की भाँति हमारे सम्मुख एक-एक करके दृश्यमान होने लगता है, जिसे हम मन की आँखों से देखते जाते हैं।

किसी दृश्य को देखकर हमें दुःख होता है तो किसी दृश्य को देखकर सुख होता है, किसी को देखकर घृणा होती है तो किसी को देखकर लज्जा आती है। किसी बात को याद कर हम रोने लगते हैं तो किसी घटना को याद कर हम हँसने लगते हैं। किसी घटना को याद कर हम लज्जित होते हैं तो किसी घटना को याद कर हम सुखी होते हैं तो किसी को याद कर दुःखी होते हैं।

इस प्रकार किसी घटना को याद कर हम क्रोध से भर जाते हैं और उस घटना से जुड़े व्यक्ति से बदला लेने की सोचने लगते हैं। किसी मधुर स्मृति का स्मरण होते ही हम उन स्मृतियों से जुड़े व्यक्तियों, वस्तुओं के प्रति पुनः आकर्षित हो उन्हें पाने को आकुल हो उठते हैं व उन व्यक्तियों, वस्तुओं के प्रति आसक्त हो जाते हैं।

एक संसार वह है, जो हमें बाहर दिखाई पड़ता है; जिसमें मकान, दुकान, रेल, सड़क, वायुयान, आकाश, नदी, समुद्र, वन-उपवन, खेत-खलिहान, सूर्य-चंद्र, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि दिखाई देते हैं और एक संसार वह है, जो हमारे मन में

समाया हुआ है, बसा हुआ है और जिसका हमारे ऊपर आधिपत्य है, अधिकार है और हमें अपने असर से, प्रभाव से वह कभी रोने तो कभी हँसने, कभी सुखी तो कभी दुःखी होने को विवश करता है।

कभी अच्छे तो कभी बुरे, कभी शुभ तो कभी अशुभ, कभी पुण्य तो कभी पापकर्म करने को विवश करता है। इसलिए हम वास्तविक सुख-शांति, समृद्धि और आनंद से वंचित हैं। कभी हम लाखों की भीड़ के बीच भी स्वयं को अकेला पाते हैं तो कभी अकेला, एकांत में होते हुए भी अपने आप को अपने मन में बसे संस्कारों, स्मृतियों की भीड़ में पाते हैं और परेशान होते हैं। जब तक मन में यह संसार बसा है, तब तक हम सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, मान-अपमान के द्वंद्वों से घिरे रहेंगे और दुःखी तथा परेशान रहेंगे।

इन द्वंद्वों से मुक्त हो जाने पर ही वास्तविक सुख-शांति और समृद्धि को पाना संभव है, पर यह तभी संभव है, जब मन में बसा यह संसार सदैव के लिए समाप्त हो जाए और संस्कारों के संसार से मुक्त होकर मन आत्मा से युक्त हो जाए। तभी हमें आत्मा से निस्सृत आनंद और ज्ञान की उपलब्धि हो सकेगी और मन को संस्कारों के संसार से मुक्त कर आत्मा से युक्त करने का बड़ा ही प्रभावशाली साधन है—ध्यान।

मन से परमात्मा का ध्यान करते रहने से मन में बसे कर्म-संस्कारों का संसार विलुप्त होने लगता है, मन निर्मल होने लगता है, फिर उस निर्मल मन से आत्मा में परमात्मा का साक्षात्कार होने लगता है। आत्मा से आनंद, ज्ञान, प्रेम निस्सृत होने लगता है। ध्यान के अभ्यास से अहम् का विसर्जन, चेतना का जागरण और जीवन का रूपांतरण होने लगता है। आत्मा-परमात्मा के मिलन संयोग को ही परमानंद कहा गया है।

परमपूज्य गुरुदेव ने यह स्पष्ट किया है कि 'आत्मा-परमात्मा के मिलन संयोग से ही मनुष्य को परमानंद की अनुभूति होती है। विषयों से मिलने वाले क्षणिक सुख से मनुष्य कभी अघाता नहीं, कभी भी उसे तृप्ति मिलती नहीं और उसकी शक्ति सदैव नष्ट होती रहती है, पर आत्मा में ब्रह्म का सतत ध्यान करते-करते साधक को सहज ही आत्मा में ब्रह्म के संस्पर्श से परमानंद की अनुभूति होती है और वह तृप्ति, तुष्टि और शांति पाता है। मैं देह मात्र नहीं हूँ। मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ, मैं ब्रह्म हूँ, इस भाव का सतत अभ्यास, स्मरण, ध्यान करते-करते साधक उसी ब्रह्म में स्थित हो जाता है। अभिन्न भाव से सतत ब्रह्म में स्थित साधक को ब्रह्मभूत कहते हैं।'

अस्तु यह स्पष्ट है कि परमात्मा का सतत चिंतन, ध्यान करते रहने से ही मन आधारित मनुष्य आत्मा की ओर अग्रसर हो सकता है और परमानंद की प्राप्ति कर सकता है। परमानंद की प्राप्ति तभी संभव है, जब मन चंचल होकर इधर-उधर न भटके, मन में किसी तरह के विकार उत्पन्न न हों, मन पूरी तरह निर्मल हो और मन ब्रह्ममय हो और ब्रह्ममय हो जाने पर मन जब एक बार ब्रह्म के परम सौंदर्य और परमानंद का रसास्वादन कर लेता है, तब उसे सारे विषयभोग फीके और तुच्छ लगने लगते हैं और मन की सहज वृत्ति ब्रह्ममय हो जाती है।

श्री रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे कि 'जिसने एक बार ब्रह्मानंदरस का स्वाद चख लिया, उसे रंभा और तिलोत्तमा भी चिता की भस्म के समान प्रतीत होती हैं।' अस्तु यह स्पष्ट है कि ब्रह्म का ध्यान, सुमिरन, भजन, भक्ति करते रहने से ही मन की वृत्तियाँ मिटती हैं, सांसारिक आसक्तियाँ मिटती हैं और मन में भगवान के प्रति प्रेम और

अनुराग पैदा होता है। इसलिए मन को ब्रह्ममय करने के लिए मन को आत्मा से युक्त करना आवश्यक है। गीताकार भगवान श्रीकृष्ण गीता (6.28) में कहते हैं—

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते॥

अर्थात इस प्रकार पापरहित योगी अपने मन को सदा के लिए आत्मा के साथ युक्त करके निरंतर आत्मा को परमात्मा में लगाता हुआ सहज ही ब्रह्म संस्पर्श अर्थात परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति रूप अनंत आनंद का अनुभव करता है।

ध्यान के फलस्वरूप साधक को परमानंद की प्राप्ति के साथ-साथ भौतिक सुखों की भी प्राप्ति होती है। ध्यान के प्रभाव से मनुष्य का मन व तन, दोनों स्वस्थ होते हैं। मनोबल, आत्मबल की वृद्धि होती है, जिससे उसे भौतिक क्षेत्र में भी सर्वत्र सफलता प्राप्त होती है। वह कुंठा, तनाव, अवसाद, चिंता, उद्विग्नता आदि मानसिक व्याधियों एवं नानाविध मनोकायिक रोगों से भी मुक्त होकर उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त कर भौतिक सुख प्राप्त करता है।

मनोचिकित्सक फ्रायड के अनुसार अचेतन मन में दमित, उपेक्षित और अव्यवस्थित विचारों का जमाव होने के कारण विध्वंसक और कुंठित भावनाओं का ध्रुवीकरण होने लगता है, पर ध्यान के निरंतर अभ्यास से अचेतन मन में दफन व दमित विचार चेतना के तल पर आकर विसर्जित और विलीन होने लगते हैं।

अचेतन मन में दमित, उपेक्षित विचारों, विकारों, इच्छाओं के कारण विध्वंसक व कुंठित भावनाओं का ध्रुवीकरण होने लगता है, जिसके प्रभाव में आकर मनुष्य नानाविध बुरे कर्म करने को प्रेरित होता है। नानाविध मानसिक, शारीरिक व्याधियों का शिकार होता है, इसलिए ध्यान के प्रभाव से अचेतन मन का परिष्कार होने से मनुष्य मानसिक व शारीरिक व्याधियों से भी मुक्त होकर शरीर व मन से स्वस्थ व प्रसन्न हो उठता है। इसलिए ध्यान से शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य की उपलब्धि के साथ-साथ, आत्मिक ज्ञान व आत्मिक आनंद की उपलब्धि भी होती है।

मन के आत्मा में समाहित होते ही साधक स्वयं को सत्-चित्-आनंदस्वरूप आत्मा में अवस्थित पाता है और आत्मा में अवस्थित होने के कारण अर्थात अपने वास्तविक स्वरूप में अवस्थित होने के कारण वह पूरी तरह निर्भय हो जाता है। वह यह अनुभव करने लगता है कि आत्मा परमात्मा का अंश है। आत्मा सत्य-सनातन और पुरातन है। फलस्वरूप वह मृत्यु के भय से भी मुक्त हो जाता है।

संत कबीर ने कहा है—

जिस मरने से जग डरे, मेरे मन आनंद।
मरने ही ते पाइए पूरन परमानंद॥

तब ध्यान साधक के लिए 'आत्मा का अजर, अमर होना, आत्मा का आनंद और सौंदर्य का स्रोत होना' आदि कोई सुनी-सुनाई बात नहीं रह जाती; क्योंकि वह आत्मा में अवस्थित होकर आनंद और सौंदर्य को हर पल जीता और अनुभव करता है।

सामान्य मनुष्य को हर पल कुछ खोने, धन खोने, बीमार होने या मरने का भय सताता रहता है, पर आत्मा के अमर होने का अनुभव होते ही साधक को कोई भय नहीं रह जाता। वह निर्भय हो जाता है। ध्यान के निरंतर अभ्यास से आत्मा और ब्रह्म की एकता का अनुभव पा लेने के कारण साधक को जीवन में किसी प्रकार का कोई भय नहीं रह जाता है। वह निर्भय होकर इस संसार में जीता है और हर पल आत्मिक सुख-शांति और आनंद की अनुभूति करता है।

स्वामी विवेकानंद के अनुसार—'ध्यान मन को सभी आने वाली विचार-तरंगों और दुनिया भर के माया-मोह से निजात दिलाता है। मन को आत्मा से समाहित करता है। इससे हमारी चेतना का विस्तार होता है और हमें आत्मबोध की उपलब्धि होती है।' अस्तु हमें भी नित्य 10 से 15 मिनट तक ध्यान करना चाहिए।

अपने मन में नित्य परमात्मा का ध्यान करते रहना चाहिए। जैसे-जैसे मन ध्यान में डूबता जाएगा, आत्मा में परमात्मा का अनुभव स्वयं ही उतरता जाएगा। हाँ! धीरे-धीरे ध्यान के अभ्यास को 15 मिनट से बढ़ाकर घंटों तक किया जा सकता है। किसी सरोवर, नदी, तीर्थस्थान, पवित्र स्थान या प्रकृति की गोद में बैठकर ध्यान का अभ्यास किया जा सकता है। अपनी रुचि अनुसार सगुण या निर्गुण ब्रह्म का अपने हृदय में ध्यान किया जा सकता है और ध्यान के निरंतर अभ्यास से निश्चित ही शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य के साथ-साथ शाश्वत सुख, शांति, आनंद और भगवत्प्राप्ति की जा सकती है। इसमें कोई संदेह नहीं, संशय नहीं। हम भी क्यों न ध्यान से आनंद की ओर चल पड़ें। ❑

देवता और दैत्य अपना-अपना प्रतिनिधिमंडल लेकर भगवान के पास पहुँचे। उन्होंने भगवान के सम्मुख अपना निवेदन रखा और बोले—"प्रभु! सृष्टि के चक्र से मुक्त होने के लिए आपने जो साधना का विधान बनाया है, वह बड़ा कष्टसाध्य है। कृपया यह व्यवस्था हमें दे दें, ताकि हम थोड़ा सरल मार्ग निकाल सकें।"

भगवान ने सहजता से यह व्यवस्था उनको प्रदान कर दी। कुछ दिनों तक सब ठीक चला, बाद में समूह ने देखा कि बिना कष्टसाध्य प्रयास के जो आत्माएँ जीवनमुक्त हो रही हैं जनसामान्य के मन से जीवन के प्रति सम्मान की भावना जा रही है।

लोग बे-मन से थोड़ी-बहुत साधना में रत होते और उसका त्वरित प्रभाव मिलने पर पुनः भोग-विलास में लिप्त हो जाते। सृष्टि में धीरे-धीरे अव्यवस्था फैलने लगी। चिंतातुर प्रतिनिधिमंडल पुनः भगवान के पास पहुँचा और प्रस्तुत स्थिति का विवरण उन्हें प्रदान किया।

भगवान हँसे और बोले—"साधना का अर्थ ही संघर्ष है। बीज पृथ्वी के साथ संघर्ष करता है, तभी उसमें से अंकुर निकल पाता है। भ्रूण शरीर के साथ संघर्ष करता है तो जन्म पाता है। तुमने साधना में से संघर्ष निकाल लिया तो वह मूल्यहीन हो गई।"

प्रतिनिधिमंडल को अपनी भूल का भान हुआ और साधना का पथ पुनः तपस्वियों के लिए सुरक्षित हो गया।

मुक्ति का द्वार

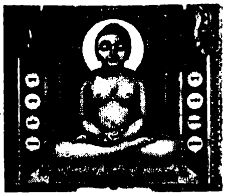

बारह वर्षों की घोर तपस्या के फलस्वरूप वर्धमान महावीर को पूर्ण ज्ञान प्राप्त हुआ था। उन्हें सत्य का बोध हुआ था। पूर्णज्ञान की प्राप्ति के उपरांत वे संसार के प्राणियों को यह बतलाने लगे कि उनके दु:खों का कारण क्या है और उन कारणों को दूर कर सच्चा सुख, अनंत सुख कैसे पाया जा सकता है।

इस प्रकार तीस वर्षों तक वे संसार को ज्ञानदान करते रहे और समस्त प्राणियों को कल्याण का मार्ग दिखाते रहे। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि संसार के जीवों के दु:खों का मूल कारण उनका अपना अज्ञान ही है। अज्ञान के कारण ही मनुष्य अपने शरीर को ही अपना सब कुछ मानता रहा है।

वह शरीर के सुख-दु:ख को ही वास्तविक सुख-दु:ख मानता रहा है। वह अज्ञान के कारण ही किसी से राग और किसी से द्वेष करता रहा है। अस्तु यह जान लेना आवश्यक है कि यह शरीर क्षणभंगुर है और शरीर के सुख-दु:ख भी क्षणभंगुर हैं। अत: हमें इस शरीर को सुख-दु:ख देने की ओर ध्यान न देकर अपनी आत्मा की ओर देखना चाहिए, क्योंकि वास्तविक जीव तो यह आत्मा ही है।

वस्तुत: हम आत्मा ही हैं और जिस क्षण हम अपने को आत्मा और शरीर को पर मान लेंगे, जान लेंगे; उसी क्षण हमारी जीवन-दृष्टि बदल जाएगी और जीवन दृष्टि बदलते ही हम तदनुरूप आचरण करना प्रारंभ कर देंगे और फिर हमारे दु:खों के कारण स्वयमेव ही दूर होते जाएँगे।

भगवान महावीर ने यह बतलाया कि किसी भी जीव को सुख व दु:ख देने वाला कोई अन्य जीव नहीं है, अपितु पूर्व में किए हुए उसके स्वयं के अच्छे व बुरे कर्म ही उसके सुख और दु:ख के कारण हैं। अस्तु हमें तटस्थ व समताभाव से अपने सुख और दु:ख को सहन करते रहना चाहिए। इससे हमारे पुराने कर्म अपना फल देकर नष्ट हो जाएँगे और भविष्य के लिए हमारे कर्मों के संचय होने की संभावना समाप्त होती जाएगी।

यदि हम फल की आशा किए बगैर ही सदैव शुभ कर्म, अच्छे कर्म करें तो इससे कर्मों के संचय होने की संभावना समाप्त होती जाएगी और शनै:-शनै: हमारे दु:खों के कारणों का अभाव होता जाएगा और शुभ कर्मों के परिणामस्वरूप हमें सुख की प्राप्ति होती जाएगी।

यदि हम समताभाव से सदैव तप-साधना करते रहें तो एक समय अवश्य ही ऐसा आएगा, जब हमारे दु:खों के कारण समस्त कर्मों का सर्वथा अभाव हो जाएगा। भगवान महावीर ने यह बतलाया कि इस संसार की समस्त आत्माएँ सदैव से हैं और वे सदैव ही रहेंगी। वे अपने-अपने कर्मों के अनुसार भिन्न-भिन्न शरीर धारण करती रहती हैं और उन्हीं कर्मों के अनुसार सुख और दु:ख भोगती रहती हैं।

उन्होंने यह भी बताया कि जब तक उनके कर्मों का क्षय नहीं हो जाता, तब तक वे कोई-न-कोई शरीर धारण करती ही रहेंगी। जब उनके कर्मों का क्षय हो जाएगा, तभी उन्हें मोक्ष की प्राप्ति होगी और मोक्ष की प्राप्ति होने पर ही उन्हें सच्चा सुख, अनंत सुख प्राप्त हो सकेगा। हमें जीवन में सत्य, अहिंसा,

अपरिग्रह, संयम आदि का पालन करते हुए सदैव तप-साधना व शुभ कर्म करते रहना चाहिए। इसी से हमारा जीवन सुंदर और सुखी बनेगा। यही है सुंदर व सुखी जीवन का राजमार्ग।

भगवान महावीर ने यह स्पष्ट किया कि जब तक जीव के साथ अच्छे व बुरे कर्मों का बंधन लगा हुआ है, तब तक यह जीव इस संसार में जन्म-मरण करता हुआ सुख व दुःख भोगता रहेगा, परंतु जब यह जीव अपने सत्पुरुषार्थ अर्थात सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, तप, त्याग, ध्यान, संयम आदि के द्वारा इन कर्मों के बंधन को छिन्न-भिन्न कर देगा, तभी यह जीव मुक्ति व आनंद पाने का अधिकारी हो जाएगा। अपने कर्मों को नष्ट करने में उसे किसी भी अन्य जीव की सहायता की अपेक्षा नहीं है।

उन्होंने आगे बताया कि यह कार्य वह स्वयं अपने सत्पुरुषार्थ के द्वारा कर सकता है। एक बार मुक्ति प्राप्त कर लेने पर यह आत्मा अनंत काल तक मुक्ति में ही रहती है और फिर लौटकर संसार में नहीं आती; क्योंकि इस जीव को संसार में जन्म-मरण कराने व सुख-दुःख देने के कारण जो कर्म होते हैं, उनका ही सर्वथा अभाव हो जाता है। मुक्ति में यह आत्मा अनंतकाल तक एक अनुपम, अद्वितीय, अलौकिक व अतींद्रिय आनंद की अनुभूति करती रहती है। मुक्ति व आनंद का यह द्वार संसार के सभी प्राणियों के लिए समान रूप से खुला हुआ है, केवल उसको सम्यक पुरुषार्थ करने की आवश्यकता भर है। ❑

पेड़ की ऊँची डाली पर नारियल लटका हुआ था। उसने नीचे नदी पर पड़े पत्थर को देखकर कहा—''ओ पत्थर! यह नदी तुम्हें क्या देती है ? इसकी धाराओं के रोज पड़ते प्रहारों से तुम घिस-घिसकर मर जाओगे, लेकिन नदी नहीं छोड़ोगे। अपमान सहने की भी कोई सीमा होती है या नहीं। मुझे देखो, कैसी शान से आसमान में बैठा हूँ।''

पत्थर ने उसकी बात सुनकर भी अनसुनी कर दी। कुछ दिनों बाद नारियल ने देखा कि नदी का वही पत्थर शालग्राम के रूप में मंदिर में प्रतिष्ठित है, जिसकी पूजा के लिए उसे सामग्री के रूप में लाया गया है।

इस बार पत्थर बोला—''नारियल भाई! देखो घिस-घिसकर परिष्कृत होने वाले प्रभु के अनन्य बनते हैं और आदर के पात्र बनते हैं; जबकि अहंकार के मतवाले अपने ही दंभ से पीड़ित होकर नीचे आ गिरते हैं।'' भगवान की दृष्टि में मूल्य समर्पण का है, अहंकार का नहीं।

समाधानपरक आध्यात्मिक पथ

जीवन एक कर्मक्षेत्र है, युद्धक्षेत्र है और एक पहेली भी। इसे परिपूर्णता से जीने के लिए जीवन को हर तल पर, हर स्तर पर मुस्तैदी से जीना पड़ता है। इसी आधार पर जीवन का समग्र विकास सुनिश्चित होता है, इसके रहस्य का अनावरण होता है, हालाँकि यह एक समयसाध्य प्रक्रिया है, जो धीरे-धीरे रूपाकार लेती है व समय के साथ परिपक्व होती है।

व्यक्ति की प्रकृति, स्वभाव एवं संस्कार आदि के अनुरूप सबका अपना समाधान पथ निर्धारित होता है, लेकिन इसके मोटे नियम तय हैं। ऋषियों ने धर्म-अध्यात्म के रूप में इनका समग्र विवेचन किया, जिस पर परमपूज्य गुरुदेव ने आज के संदर्भ में व्यापक प्रकाश डाला है। इनके आलोक में आज की परिस्थितियों पर विचार अभीष्ट हो जाता है। विशेषकर तब, जब धर्म-अध्यात्म के नाम भ्रम-भ्रांतियों का कुहासा चहुँओर सघन रूप से छाया हुआ हो।

धर्म-अध्यात्म का क्षेत्र स्वयं में एक विज्ञान है, दर्शन है, जिसका अपना मनोविज्ञान है, अपना विधान है। चेतना के विकास की क्रमिक अवस्था के साथ इसमें प्रवेश होता है। परमपूज्य गुरुदेव ने इसे धार्मिकता, आस्तिकता और आध्यात्मिकता के रूप में क्रमबद्ध किया है।

इसका पहला पक्ष कर्मकांड प्रधान कहा जा सकता है, दूसरा भाव प्रधान और तीसरा परिपक्व ज्ञान से युक्त समाधान प्रधान। इस तरह क्रमिक रूप से कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग साधक के जीवन के अंग बनते जाते हैं और ध्यान की अंतर्धारा इनके मध्य परिपक्व पुष्ट होती जाती है, जिसकी चरम परिणति जीवन के पूर्ण समाधान की अवस्था अर्थात समाधि के नाम से मानी गई है।

इसमें चित्त की गहराइयों में जड़ जमाए संस्कार सबसे प्रमुख व्यवधान के रूप में सामने आते हैं, जो बाह्य जीवन की बढ़ी-चढ़ी कामनाओं, इच्छाओं, वासनाओं व महत्त्वाकांक्षाओं के रूप में प्रकट होते हैं। ऐसे में धर्म-अध्यात्म के नाम पर जो साधनात्मक पुरुषार्थ होते हैं, वे अपनी प्रारंभिक अवस्था में प्राय: सकाम रूप लिए होते हैं, लेकिन आध्यात्मिक अभीप्सा के साथ, चेतना के विकास के साथ ये परिमार्जित होते हैं, परिष्कृत होते हैं तथा व्यक्ति क्रमश: निष्कामता की ओर अग्रसर होता है।

इस क्रम को चेतना की त्रिगुणात्मक प्रकृति के आधार पर भी समझा जा सकता है। तमोगुण चेतना की जड़ अवस्था है, जिसमें व्यक्ति आलस्य, मूढ़ता, घोर मोह व अज्ञान की अवस्था में होता है। रजोगुण व्यक्ति में इच्छाओं व कामनाओं के उद्‌दाम आवेग से भरी सक्रियता की अवस्था है। वास्तव में तमोगुण परिष्कृत होकर रजोगुण का रूप लेता है और यह क्रमिक रूप से परिष्कृत होकर सतोगुण में रूपांतरित होता है, जो ज्ञान, हलकेपन व चेतना की उन्नत अवस्था के रूप में जीवन को प्रकाशित करता है। जीवन का परम लक्ष्य इसके भी पार गुणातीत अवस्था में स्थिर होना माना गया है।

आश्चर्य नहीं कि एक औसत इनसान के प्राय: हर कार्य स्वार्थ व कामना से प्रेरित होते हैं। वे आशा-अपेक्षाओं से भरे होते हैं, लेकिन साथ ही अंत:करण में श्रेष्ठ जीवन के प्रति अभीप्सा के

भाव भी हिलोरें ले रहे हों तो स्थिति को पलटते देर नहीं लगती।

इस पृष्ठभूमि में जिन कार्यों को हम समाजरूपी विराट ब्रह्म, इष्ट या गुरु को अर्पित कर संपन्न करते हैं, वे निष्कामता की श्रेणी में आ जाते हैं। अन्यथा वे सकाम रहते हैं व इनके साथ राग-द्वेष, स्वार्थ-अहं से जुड़ी क्रिया-प्रतिक्रियाएँ भी जुड़ी रहती हैं।

शनैः-शनैः इनकी निस्सारता समझते हुए इनसे ऊपर उठने का क्रम बनता है और क्रमिक रूप से चित्त की शुद्धि होती है। इसके बाद ही धर्म-अध्यात्म की गहराइयों में प्रवेश होता है। आज धर्म-अध्यात्म के क्षेत्र में भ्रांतियों का कुहासा छाया हुआ है, इसमें ऐसे लोगों की भरमार है, जिनका उपरोक्त वर्णित धर्म-अध्यात्म से कोई लेना-देना नहीं। कुछ पलायन मार्ग से इसमें प्रवेश कर बैठे हैं, संसार में कुछ कर न पाए, तो साधु वेश में अपना भाग्य आजमा रहे हैं। आज इनकी संख्या बढ़ी-चढ़ी है।

आत्मकल्याण के लिए समाज पर बोझा बने इस वर्ग के स्वयं के उत्कर्ष को लेकर क्या प्रयास चल रहे हैं तथा समाज के उत्थान के लिए इनका क्या योगदान है, ये सब शोध का विषय है। ऐसे तथाकथित साधु-महात्माओं की संख्या इस समय लाखों में है।

यदि ये एक-एक गाँव को भी गोद में ले लेते, तो देश व समाज का कायाकल्प हो जाता। धर्म-अध्यात्म का पलायन से दूर-दूर का भी रिश्ता नहीं। यह तो जीवन की सबसे बड़ी चुनौती का सामना करते हुए स्वयं पर विजय का परम शौर्य मार्ग है, जिसके साथ समाज, विश्व एवं प्राणिमात्र के कल्याण का मार्ग सुनिश्चित होता है।

यह क्षेत्र सत्य-धर्म के प्रति निष्ठा तथा आदर्शों के प्रति असीम प्रेम से जुड़ा हुआ है। यह परमार्थ एवं निरहंकारिता का पथ है, जिसमें दया, करुणा, प्रेम, संवेदना जैसे भाव सहज रूप से हिलोरें ले रहे होते हैं, यह विराट के हित क्षुद्र स्वार्थ-अहंकार के उत्सर्ग का बलिदानी मार्ग है। अपने साथ समूह तथा प्राणिमात्र का कल्याण इसमें निहित रहता है।

किसी समाज व राष्ट्र का उत्कर्ष ऐसे ही सत्यनिष्ठ, धर्मपरायण व सच्चरित्र व्यक्तियों के तप-पुण्य के आधार पर संभव होता है। इनका कट्टरता, अंधविश्वास, सांप्रदायिक हिंसा, द्वेष आदि से कोई लेना-देना नहीं होता है, जो कि समय के साथ तमाम तरह की समस्याओं व विसंगतियों को जन्म देते हैं। यह समाधान का हिस्सा बनकर जीने का नाम है।

उपकारकरस्यैव यत् पुण्यं जायते त्विह।
तत् पुण्यं शक्यते नैव वक्तुं वर्ष शतैरपि॥

अर्थात उपकार करने वाले को जो पुण्य प्राप्त होता है, उसका वर्णन सौ वर्षों तक नहीं किया जा सकता।

परमपूज्य गुरुदेव ने जीवनपर्यंत इसी अध्यात्म की चर्चा की तथा वे स्वयं इसके जीवंत प्रतिमान रहे। पूरा गायत्री परिवार इसी की धुरी पर खड़ा है—जिसका साधक परिवार कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग व ध्यानयोग की समग्रता को व्यावहारिक अध्यात्म के रूप में जीवन में धारण करते हुए समाजसेवा के माध्यम से आत्मकल्याण के पथ पर अग्रसर है।

इनके लिए गृहस्थ एक तपोवन है, जहाँ वे संयम, सेवा और सहिष्णुता की साधना कर रहे हैं तथा एक संस्कारित परिवार के साथ एक सभ्य समाज की परिकल्पना साकार करने की दिशा में अग्रसर हैं तथा अपनी रचनात्मक गतिविधियों के माध्यम से युग निर्माण के महत्तर कार्य में अपना भावभरा योगदान दे रहे हैं। ❑

मन:स्थिति बदले तो परिस्थिति बदले

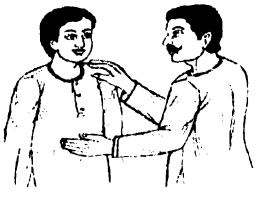

एक महात्मा से किसी व्यक्ति ने कहा— "महाराज! घर-गृहस्थी व कारोबार से फुरसत ही नहीं मिलती। फिर मैं भगवान का ध्यान कब और कैसे करूँ?"

महात्मा बोले—"एक मंदिर में तीन लोग भगवान को धन्यवाद दे रहे थे। एक ने कहा—'हे प्रभु! आप बड़े कृपालु हैं। मेरी पत्नी इतनी धार्मिक है कि वह भगवद्ध्यान, भगवत्पूजा और स्वाध्याय-सत्संग में कभी बाधक नहीं बनती। मैं इसी कारण निश्चिंत होकर, एकाग्र होकर नित्यदिन आपकी पूजा करता हूँ, ध्यान करता हूँ, स्तुति करता हूँ, यज्ञ करता हूँ, शास्त्रों का स्वाध्याय करता हूँ। सत्संग करता हूँ, दान करता हूँ, परोपकार करता हूँ, जनसेवा करता हूँ और बड़े आनंदपूर्वक जीवन जीता हूँ। हे प्रभु! यह सब आपकी कृपा के कारण ही संभव हो पाया है। इसलिए आपको बारंबार धन्यवाद देता हूँ।'

"वहाँ खड़ा दूसरा व्यक्ति बोला—'हे प्रभु! आपने मेरे उपर बड़ा उपकार किया है कि मुझे कर्कशा पत्नी मिली है। मेरी पत्नी इतनी कर्कशा है कि उसके प्रति मेरी कोई आसक्ति रही ही नहीं। प्रारंभ में उसके प्रति मेरे मन में जो भी आसक्ति थी वह एक-एक कर मिटती चली गई और यह सब उसके कर्कशा होने के कारण ही संभव हो पाया। यदि वह कर्कशा न होती तो शायद मैं उसके प्रति अधिक-से-अधिक आसक्त होता और तब मैं आपके प्रति आसक्त नहीं हो पाता। मैं धन-दौलत, पुत्र-पत्नी के चिंतन और चिंता में ही इतना अधिक डूबा होता कि फिर आपका चिंतन, आपका ध्यान नहीं कर पाता। हे प्रभु! पत्नी व घर-गृहस्थी के प्रति आसक्त न होने के कारण मैं आपके प्रति आसक्त हुआ हूँ। और दिन-रात मैं आपके ध्यान में डूबा रहता हूँ। फलस्वरूप मुझे हर पल आत्मिक आनंद की अनुभूति होती है और मैं कष्ट और कठिनाइयों में भी अविचलित रहकर सदा ईमानदारी और सच्चाई के मार्ग पर चलता हुआ अपने गृहस्थ जीवन व सामाजिक जीवन की जिम्मेदारियों का पालन करने में सफल होता हूँ। हे प्रभु! इसके लिए आपको बारंबार धन्यवाद।'

"वहीं भगवान की प्रतिमा के समक्ष खड़े तीसरे व्यक्ति ने कहा—'हे परमात्मा! आप बड़े दयालु हैं। मेरे तो बीबी-बच्चे ही नहीं हैं, जो आपके और मेरे बीच में दीवार बनते। अत: मेरा मन आपके चरणों में लगा रहता है। हे भगवान! आपकी पूजा-भक्ति और ध्यान से मुझे जो आत्मिक सुख की प्राप्ति होती है, वह बीबी-बच्चे और धन-दौलत के बीच होते हुए भी नहीं मिल पाती। हे प्रभु! आपकी मेरे ऊपर बड़ी कृपा है। आपको बारंबार धन्यवाद।'

"इस प्रकार मंदिर में उपस्थित उन तीन लोगों द्वारा भगवान को धन्यवाद ज्ञापित किए जाने की बातें सुनाकर उन महात्मा ने उस व्यक्ति को समझाते हुए कहा—'देखो! अलग-अलग स्थिति में होते हुए भी तीनों व्यक्ति प्रसन्नचित्त, ईश्वर के प्रति कृतज्ञ और भक्ति में लीन थे। उन तीनों के मन में ईश्वर के प्रति या परिस्थितियों के प्रति कोई शिकायत नहीं थी। अत: परिस्थिति चाहे जैसी भी हो, अपनी मन:स्थिति को ठीक रखना चाहिए।' महात्मा के वचन सुनकर उस व्यक्ति की समस्या का समाधान हो गया।"

यह कहानी यह स्पष्ट करती है कि मन:स्थिति से ही अच्छी या बुरी परिस्थिति का निर्माण होता है। यदि मन:स्थिति ठीक है तो विपरीत परिस्थितियाँ भी अनुकूल हो जाती हैं और मन:स्थिति ठीक न होने पर अनुकूल परिस्थितियाँ भी प्रतिकूल प्रतीत होती हैं, प्रतिकूल होती जाती हैं और जीवन में कष्ट-कठिनाइयों की बाढ़-सी आने लगती है, जिससे जीवन कष्टप्रद हो जाता है।

मन:स्थिति यदि सकारात्मक हो, हमारी दृष्टि यदि सकारात्मक हो तो हम नकारात्मक विचारों से अछूते, अप्रभावित रहकर सदा अच्छे कर्म, सत्कर्म करते हैं और सुख पाते हैं, पर मन नकारात्मक विकारों, विचारों से भरा हो तो इस दुनिया में हर चीज हमें बुरी ही लगती है। सौंदर्य से भरी हुई दुनिया भी बड़ी उदासीन लगती है।

यह उदासी बाहर नहीं, बल्कि हमारे मन में है। मन पर जिस रंग का चश्मा चढ़ा हुआ होता है, हमें दुनिया भी उसी रंग की दिखती है, वैसी ही दिखती है। हम सुख में भी दु:ख ढूँढ़ते फिरते हैं। फिर हम वही पाते हैं, जिसे हम ढूँढ़ते फिरते हैं। अस्तु यह सारा खेल हमारी मन:स्थिति का है, परिस्थिति का नहीं।

यदि हमारी दृष्टि ही दोषपूर्ण है, यदि हमारे मन में ही कषाय-कल्मष भरा पड़ा है तो उस मन से देखने भर से यह दुनिया भी कषाय-कल्मषों से भरी हुई दिख पड़ेगी, पर यदि मन स्वच्छ है, मन निर्मल है, मन पवित्र है तो संपूर्ण सृष्टि में सौंदर्य और पवित्रता ही दृष्टिगोचर होंगे।

पवित्र मन, निर्मल मन ही इस संसार के सौंदर्य और सुख का पान कर पाता है, वहीं मलिन मन में सदा ही बुरे विचारों व विकारों का वास होता है, जिससे प्रेरित होकर व्यक्ति बुरे कर्म करता है और दु:खी होता है।

जब मन निर्मल हो तो यह संसार स्वर्ग-सा दीख पड़ता है, पर यदि मन निर्मल न हो तो स्वर्ग भी नरक-सा प्रतीत होता है और व्यक्ति स्वर्गीय, आनंददायी अनुकूल परिस्थितियों को भी दु:खदायी और प्रतिकूल बना लेता है और दु:ख तथा कष्ट भोगता है। इसलिए यह सारा खेल मन:स्थिति का ही है। इसलिए तो संत इमर्सन कहा करते थे कि 'तुम मुझे नरक में भेज दो, मैं वहाँ भी स्वर्ग बना लूँगा।'

परमपूज्य गुरुदेव ने इस संबंध में ठीक ही कहा है कि स्वर्ग और नरक कोई स्थान नहीं, बल्कि मन:स्थितियाँ हैं; जिनके कारण मनुष्य के जीवन में स्वर्गीय (सुखद) या नारकीय (दु:खद) परिस्थितियाँ बनती हैं। सचमुच मन:स्थिति बदले तो परिस्थिति बदले।

धर्मं यो बाधते धर्मो न स धर्मः कुधर्मकः।
अविरोधात्तु यो धर्मः स धर्मः सत्यविक्रम॥

अर्थात जो धर्म दूसरे धर्मों का विरोधी हो, वह वास्तविक धर्म नहीं है। जिसका किसी धर्म से विरोध नहीं होता, वही वास्तविक धर्म कहलाता है।

यदि हम चाहते हैं कि हमारे जीवन में सदैव स्वर्गीय अर्थात सुखद परिस्थितियाँ बनी रहें तो इस हेतु हमारी मन:स्थिति का भी ठीक वैसा होना आवश्यक है। हमारी दृष्टि का भी वैसा होना जरूरी है।

पवित्र मन, निर्मल मन से ही पवित्र मन:स्थिति बनती है, इसलिए हमें हमारे मन को सदा पावन, पवित्र और निर्मल बनाए रखना चाहिए और मन को निर्मल बनाए रखने के लिए नित्य भगवत्पूजा, भगवद्उपासना, भगवद्ध्यान, शास्त्रों व सत्साहित्य का स्वाध्याय, सेवा, सत्संग, यज्ञ, दान, परोपकार आदि करते रहना चाहिए। ❑

सघन आत्मीयता का विकास

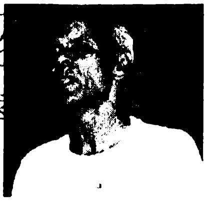

कितने ही शाकाहारी और मांसाहारी पशु वहाँ फिरा करते थे। पहले उनसे डर लगता था। अब नई दृष्टि से वे एक ही गाँव, मुहल्ले में रहने वाले साथी-सहचर से दिखने लगे। डरने की बात छूटी, विश्वास बढ़ा, परिचय के साथ ममत्व भी विकसित हुआ। जिनके निवास समीप थे, उनसे घनिष्ठता बढ़ी, उनके नाम रख लिए।

यह देखा कि जिस आकृति वाले पशु को जो नाम दिया था, वह उसने बिना सिखाए-पढ़ाए जान लिया। अक्सर आवाज देकर बुलाने पर वही पशु समीप आ जाता, जिसका नाम लिया गया था। इस तरह छह सप्ताह व्यतीत होते-होते सारा पशु परिवार मनुष्य जैसा घनिष्ठ हो गया। वे आते घंटों पास बैठे रहते, धूप सेंकते रहते। उन्हें खुजलाने, सहलाने, नहाने में सहयोग दिया तो उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

हिंस्र पशु भी आने लगे। एक मादा रीछ तो बहुत ही हिल गई। वह अपने छोटे बच्चों को झोंपड़ी के पास छोड़कर आहार की तलाश में चली जाती। बच्चे अपने पास खेलते-उछलते रहते। पहले उस क्षेत्र में मांसाहारी पशु, शाकाहारियों को आएदिन मारते-खाते रहते थे, पर जितने दिन अपना रहना उधर हुआ एक भी ऐसी घटना नहीं हुई। लगा कि उन सबने हमारे साथ ही नहीं, परस्पर भी कौटुंबिकता और सद्भावनाओं को अपना लिया है। पक्षियों के प्रति भी यही दृष्टि विकसित हुई तो वे भी उन छोटे बच्चों की तरह वहीं आस-पास फुदकने लगे।

दूर रहने वालों ने अपने घोंसले पास की झाड़ियों में बना लिए। झोंपड़ी घोंसलों से भर गई, रात को उसमें दर्जनों पक्षी विश्राम करते। खरगोश, लोमड़ी जैसे छोटे जानवरों ने तो मानो इसे अपना घर ही मान लिया हो। रात को वे उसी में घुस पड़ते और शीत से बचने के लिए परस्पर ही सटकर बैठते।

पशु-पक्षियों तक ही यह दृष्टि सीमित न रही, वरन मेंढ़क, गिरगिट, गिलहरी, चींटी, झींगुर, तितली जैसे छोटे जीवों ने भी इस आत्मीयता के दृष्टिकोण को पहचाना और स्वीकार किया। वे पास बैठते और इर्द-गिर्द चक्कर लगाने में प्रसन्नता अनुभव करते। पीछे तो वृक्ष और झाड़ियाँ भी भाई-भतीजे जैसे लगने लगे। वे अपने स्थान पर से हट तो नहीं सकते थे, पर दीखते ऐसे थे मानो हमारी सुरक्षा के प्रहरी तथा शुभचिंतक के रूप में खड़े ड्यूटी दे रहे हों।

सद्भावना उनमें भी प्रतिध्वनित होती देखी। झरने के पास जब बैठते तो तरह-तरह की भावुकता भरी दिव्य संवेदनाएँ अनायास ही मन में से उठतीं और लगता मानो वे कभी संत, तपस्वी, ब्रह्मज्ञानी की तरह अपनी मूक वाणी से हमें अंत:करण को पुलकित करने की कवित्व जैसी संवेदनाएँ प्रदान कर रहे हैं। उन स्थानों से उठने को जी न करता।

दृष्टिकोण के इस नए परिवर्तन से सारा वन्य प्रदेश सुनसान न रहकर कोलाहल भरा प्राणिसंकुल दिखने लगा। यह एक नया ही लोक था। मनुष्यों में पाई जाने वाली धूर्तता और दुष्टता का जहाँ नाम-निशान नहीं।

सूनेपन के कारण जो भय पहले लगा करता था, इस बार तनिक भी नहीं लगा, वरन यह प्रतीत

होता—दुष्ट मनुष्य की तुलना में यह वन्यलोक कहीं अधिक शांत, सात्त्विक एवं उत्कृष्ट है। यह गाथा पुरानी है कि बालक भरत सिंहनी के बच्चों को खिलाने के लिए पकड़ ले जाता था। शिवाजी ने सिंहनी का दूध दुहा था। संत ज्ञानेश्वर ने भैंसे से वेदमंत्र भी उच्चारण कराए थे। ऋषियों के आश्रमों में गाय और सिंह एक ही घाट पर पानी पीते थे।

नई अनुभूति गुरुदेव की है कि यदि अपनी आत्मा में भय, शंका, अविश्वास, द्वेष, परायापन न हो, आत्मीयता की निष्ठा अति प्रगाढ़ हो तो मनुष्य जैसे संवेदनशील प्राणी द्वारा अविकसित पशु-पक्षियों और जीव-जंतुओं में भी कौटुंबिकता विकसित की जा सकती है।

उन दिनों जब वे लौटे तब मथुरा में भी यही कौतुक हजारों ने देखा। उनकी थाली में चिड़िया, चुहिया, गिलहरियाँ भोजन साथ-साथ करतीं। जहाँ उन्होंने आवाज लगाई कि यह सारा जंतु परिवार एकत्रित हुआ। एक सज्जन साथ बैठे थे। छोटी चुहिया उन्हीं की थाली में घुस पड़ी। उनने चुहिया को तो नहीं भगाया, पर रोटी हाथ में लेने के लिए ऊपर उठाई। चुहिया रोटी से लटक गई, पर रोटी नहीं छोड़ी। इतनी निर्भयता और आत्मीयता तो उन्होंने घरेलू प्राणियों में पैदा कर ली थी। वन में भी उन्हें वैसा ही कौटुंबिक वातावरण जीव-जंतुओं के साथ मिला इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है।

आत्मीयता का उत्कृष्ट प्रवाह अपने साथ किसी को कहीं बहा ले सकने में समर्थ हो सकता, फिर भले ही वे पशु-पक्षी या कीट-पतंग ही क्यों न हों। यह हिमालय पिता का ही अनुदान था, जिसने ज्ञानचक्षु खोले और आत्मा के सर्वव्यापी होने का आभास कराया। इस आभास के कारण सर्वत्र आत्मीयता बिखरी और उसकी प्रतिक्रिया समस्त चेतन जगत् की सद्भावना अपने प्रति बरसने लगी। इससे आंतरिक आनंद एवं संतोष असंख्य गुना बढ़ गया और साथ ही आत्मबल भी विकसित होता चला गया। यह आत्मीयता का विकास ही है, जिसने लाखों व्यक्तियों को मजबूत रस्सी के साथ जकड़कर उनके साथ बाँध दिया है।

विद्वत्ता, प्रतिभा, भाषण, लेखन, संगठन, आंदोलन, प्रतिपादन आदि बहुत छोटे आधार हैं। यह कला दूसरों को भी अच्छी तरह आती है, पर वे उतना सघन कुटुंब कहाँ बना पाते हैं? उनकी कला भर आकर्षण का केंद्र बनी रहती है। ऐसे व्यक्तित्व किसी को घनिष्ठ आत्मीयता में बाँध लेने और किसी से कोई साहसपूर्ण कार्य करा सकने में समर्थ नहीं होते। गुरुदेव ने हिमालय के वातावरण में अंतर्मुखी होकर प्रकृति के कण-कण में सन्निहित दिव्यता को पढ़ा, समझा और असली शिक्षा जिसने उन्हें मात्र विद्वान ही नहीं बना रहने दिया, वरन तत्त्वदर्शी के स्तर तक पहुँचा दिया। ❑

अध्यात्म बल का संपादन कठिन नहीं, वरन सरल है। उसके लिए आत्मशोधन एवं लोक-मंगल के क्रियाकलापों को जीवनचर्या का अंग बना लेने भर से काम चलता है। व्यक्तित्व में पैनापन और प्रखरता का समावेश इन्हीं दो आधारों पर बन पड़ता है। यह बन पड़े तो दैवी अनुग्रह अनायास बरसता है और आत्मबल अपने भीतर से ही प्रचुर परिमाण में उभर पड़ता है।

—परमपूज्य गुरुदेव

बड़ी अद्भुत है आचार्य शंकर की केदारधाम यात्रा

बदरीधाम की यात्रा पूर्ण कर आचार्य शंकर ज्योतिर्धाम के रास्ते केदारनाथ धाम की ओर चल पड़े। जब ज्योतिर्धाम के राजा ने सुना कि शंकराचार्य बदरी क्षेत्र से ज्योतिर्धाम पधार रहे हैं, तब उनके हर्ष का ठिकाना न रहा। उन्होंने आचार्य शंकर के सम्मान में जगह-जगह यज्ञशाला व कीर्तन-भजन के स्थान बनवाए और शंकराचार्य के स्वागत की तैयारी करने लगे। शंकराचार्य के साथ पद्मपाद, प्रभृति आदि उनके प्रिय शिष्य भी थे।

प्रभृति ने नम्रता से झुककर हाथ जोड़ते हुए कहा—"बदरीधाम से केदारधाम का मार्ग अधिक दुर्गम है गुरुदेव।" "पर पथ की कठिनाई से घबराकर यात्री यदि हिम्मत हार जाए, तब क्या यात्रा पूरी होगी वत्स! साहसी व्यक्ति ही दुर्गम पथ को पार कर अपनी मंजिल को प्राप्त करता है।"—आचार्य बोले।

आचार्य शंकर ने मुस्कराते हुए कहा—"वत्स! प्रकृति का अप्रतिम, अनुपम व अद्वितीय सौंदर्य भी तो दुर्गम पथ से पार करते हुए ही देखने, निहारने का सौभाग्य प्राप्त होता है। साधना का पथ भी क्या सरल है प्रभृति।" "कतई नहीं।" "पर जो साहस करके उस पथ पर चल पड़ते हैं, उन्हें कितना आनंद प्राप्त होता है। उसे क्या जिह्वा वर्णन कर सकती है। पर जो साधक कठिनाइयों से घबराकर साधना-पथ छोड़ देते हैं, उन्हें वह सच्चा सुख और शांति कहाँ मिल पाते हैं।"—आचार्य शंकर मुस्कराते हुए बोले।

"गुरुदेव! सच्ची लगन, साहस, उत्साह, धैर्य और परिश्रम ही साधक को सफलता के शिखर तक ले जाते हैं, आपने हमें यही बताया था।" "हाँ पद्मपाद! साधना-पथ पर चलते हुए साधक को सफलता कैसे और कब मिलती है—तुम यह भली भाँति समझ चुके हो, अब तुम साधना का महत्त्व दूसरों को भी समझाने योग्य हो गए हो।" "गुरुदेव! आपकी कृपादृष्टि जिस पर हो जाए, वह क्या कभी असफल हो सकता है।"—पद्मपाद ने बड़ी विनम्रतापूर्वक कहा।

फिर आचार्य शंकर बोले—"वत्स पद्मपाद! यह हमेशा स्मरण रखना कि अपना उद्धार करने मात्र के लिए इस समय हम सबने जन्म नहीं लिया है। लोक-कल्याण और धर्म का पुनरुद्धार करने के लिए ही हम सब यहाँ आए हैं।" इस पर चर्चा करते हुए आचार्य शंकर अब ज्योतिर्धाम के निकट पहुँच चुके थे।

ज्योतिर्धाम के राजा सुधन्वा पहले ही आचार्य शंकर के अनुयायी बन चुके थे। अपने गुरु आचार्य शंकर के आदेशानुसार ज्योतिर्धाम नरेश धर्मकार्य में लगे रहते थे। देवालयों के जीर्णोद्धार, यज्ञ-अनुष्ठान, कीर्तन, सत्संग, सेवा आदि के कार्य वे किया करते थे। वे अपने गुरु की सेवा में सदैव तत्पर रहते थे। शंकराचार्य चाहते थे कि उनके द्वारा रचित भाष्यग्रंथों की अधिक-से-अधिक प्रतिलिपियाँ तैयार की जाएँ और बड़े पैमाने पर वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार किया जाए।

गुरु की इच्छानुसार राजा सुधन्वा ने बड़े-बड़े विद्वान पंडितों के द्वारा भाष्यग्रंथों की प्रतिलिपियाँ तैयार करवाईं। आचार्य शंकर भाष्य ग्रंथों की प्रतिलिपि देखकर बहुत प्रसन्न हुए और

ज्योतिर्धाम नरेश को आशीर्वाद देते हुए बोले—''राजन्! यह कार्य तुमने बहुत अच्छा किया। अब देवपूजा, सदाचार, विद्या, ज्ञान के प्रचार के लिए हमारे शिष्य स्थान-स्थान पर जाना चाहते हैं, तुम उन्हें सहयोग देकर उनकी सहायता करो। राजन्! यह मानव जीवन बड़ा दुर्लभ है। तुम्हारी धर्म में श्रद्धा देखकर ही धर्मप्रचार का कार्य तुम्हें सौंपा है।''

ज्योतिर्धाम नरेश ने आचार्य शंकर के चरणों की रज अपने मस्तक पर लगाते हुए कहा—''गुरुदेव! आपकी कृपा से मेरा जीवन धन्य हो गया है। आपके यहाँ पधारने से ज्योतिर्धाम भी पावन हो गया है। आपके यहाँ पधारने से ही यहाँ के लोगों में धर्म के प्रति श्रद्धा उमड़ने लगी है। आपकी कृपा से वैदिक धर्म की चहुँओर जय-जयकार हो रही है, यह देखकर हृदय हर्षित है गुरुदेव!''

ज्योतिर्धाम में उनके दर्शन को पधारे श्रद्धालुओं की प्रेम-श्रद्धा देखकर उन्होंने सभी को धर्मोपदेश देकर धर्मपथ पर चलने की प्रेरणा दी और फिर वहाँ से केदारधाम की ओर चल पड़े। ज्योतिर्धाम नरेश भी अपने श्रद्धालु कर्मचारियों सहित शंकराचार्य के साथ तीर्थयात्रा पर चलने को तैयार हो गए। मार्ग में ठहरने की व्यवस्था, खाने-पीने का प्रबंध भी सुधन्वा नरेश के सेवकगण करते चल रहे थे।

ज्योतिर्धाम से केदारनाथ धाम जाने का मार्ग अधिक दुर्गम है, यह जानकर सभी गण नंदप्रयाग के मार्ग से पंचकेदार और कल्पेश्वर तीर्थों के दर्शन करते हुए केदारधाम की ओर चल पड़े। रास्ते में आचार्य शंकर धर्मोपदेश करते जाते और श्रद्धालु उनके दर्शन और धर्मोपदेश पाकर अपने को धन्य मानते। लोग आपस में एकदूसरे से कहते—''बंधु! हमारे पिछले जन्म के अवश्य ही कोई पुण्य हैं, जो ऐसे महान तेजस्वी संन्यासी के दर्शन प्राप्त हुए हैं।''

अब सभी यात्री तुंगनाथ नामक तृतीय केदार के समीप पहुँच चुके थे। लगभग बारह हजार बहत्तर (12072) फीट की ऊँचाई पर ऊँचे-ऊँचे पर्वतों पर स्थित तुंगनाथ का सुंदर मनोहारी, प्राकृतिक दृश्य सबके मन को अभिभूत कर रहा था। वहाँ से हिमालय की अनगिनत श्वेत हिम से भरी चोटियों को देखकर सभी मंत्रमुग्ध हुए जा रहे थे।

ऐसा प्रतीत होता था मानो प्रकृति ने महायोगी केदार और बदरीनाथ के लिए हिम की श्वेत पुष्प शय्या बिछा रखी हो और स्वयं हरिहर की सेवा के लिए उनके चरणों में नीचे मुक्तकेश फैलाकर श्यामल सुंदर प्रकृति ध्यानमग्न बैठी हो।

प्रकृति के इस अनुपम सौंदर्य को देखकर आचार्य शंकर अभिभूत और अंतर्मुखी हो गए। उनका हृदय आनंद से आप्लावित हो उठा। उन्हें अपने शरीर की भी सुध न थी। वे तो चलते हुए भी मानो समाधि में स्थित हो चले थे। उनके शिष्य उनके आवश्यक नित्यकर्म कराते, उनकी देह की रक्षा करते और साथ-साथ चलते। मार्ग में कई वेदज्ञ, शास्त्रज्ञ, विद्वान, ब्राह्मण उनके साथ शास्त्रार्थ करते और उनके शास्त्र ज्ञान को सुनकर उनके अनुयायी हो जाते।

इस प्रकार अपने धर्मोपदेश से वे श्रद्धालु भक्तों को कृतार्थ करते हुए आगे बढ़े चले जा रहे थे। आचार्य शंकर तुंगनाथ से शोणितपुर, गुप्तकाशी, सोनप्रयाग आदि के दर्शन करते हुए गौरीकुंड तीर्थ पधारे। गौरीकुंड, गरम जल का बहुत बड़ा कुंड है। गौरीकुंड गौरी (माँ उमा) का तपस्या स्थल है। किसी समय माँ गौरी ने यहाँ घोर तपस्या की थी। अस्तु यह स्थान आध्यात्मिक ऊर्जा से ओत-प्रोत है।

यह समझाते हुए आचार्य शंकर शिष्यों सहित गौरीकुंड में स्नान कर यात्रा की थकान उतारकर आगे बढ़ चले। अब यहाँ से केदार-क्षेत्र आरंभ हो चुका था। मार्ग में चीरबाल भैरव और भीमसेन

चढ़ाई पार करके आचार्य शंकर अपने शिष्यों सहित केदारधाम के निकट पहुँच गए।

हिम से आच्छादित ऊँची श्यामल चोटियों और पर्वतमालाओं से घिरा केदारधाम स्वर्ग से भी सुंदर और शांत प्रतीत होता था। आचार्य शंकर ने शिष्यों से कहा—"वत्स! केदारनाथ जाग्रत देवता हैं। यहाँ के कण-कण में भगवान आशुतोष जाग्रत और जीवंत हैं। श्रद्धा से स्मरण करते ही उन्हें यहाँ अनुभव किया जा सकता है और उनकी कृपा पाई जा सकती है।"

चलते-चलते आचार्य शंकर एक स्थान पर खड़े हो गए और पीछे मुड़कर पद्मपाद और प्रभृति को संकेत से बुलाकर दिखाते हुए कहा—"देखो पद्मपाद! जिस स्थान पर हम खड़े हैं, यहाँ से पाँच पांडव जब महाप्रस्थान के लिए जा रहे थे तो वे इसी मार्ग से केदारधाम भी आए थे। चारों ओर बरफ के कारण शीतलहर चल रही थी।"

आचार्य शंकर तो बिना थके ऊपर चढ़े जा रहे थे। आचार्य शंकर उन सभी की स्थिति से परिचित थे। अस्तु उनने सभी शिष्यों, ज्योतिर्धाम नरेश व उनके कर्मचारियों को बैठने को कहा। "हम थोड़ी देर उस ओर की शिला पर बैठते हैं।"—यह कहते हुए शंकराचार्य एक छोटी शिला पर बैठकर ध्यानमग्न हो गए।

पद्मपाद शंकराचार्य के चरणों के समीप ही बैठ गया। थोड़ी देर ध्यानमग्न रहने के पश्चात आचार्य शंकर ने आँखें खोलीं और मुस्कराकर पद्मपाद की ओर देखते हुए बोले—"पद्मपाद! उधर थोड़ी दूर पर जो बरफ से ढका हुआ स्थान दिखाई दे रहा है, वहाँ खुदाई कराओ।" तीर्थयात्रा करते-करते अचानक गुरुदेव को इस स्थान की खुदाई कराने की भला क्या आवश्यकता हुई, यह सोचते हुए सुधन्वा नरेश ने अपने कर्मचारियों को गुरुदेव के बताए हुए स्थान पर खोदने का आदेश दे दिया।

बरफ और पत्थरों को हटा-हटाकर राजा के कर्मचारी उस स्थान को खोदने लगे। थोड़ी देर खोदने के पश्चात ही वहाँ गरम जल की धारा ऊपर की ओर तेजी से निकली। शीत से ठिठुरे यात्रियों के हर्ष का ठिकाना न रहा। उनमें जैसे नई प्राणशक्ति आ गई। सबने सोचा कि इतने ऊँचे पर्वत पर गरम जल का स्रोत गुरुकृपा से ही मिला है।

अपने गुरु आचार्य शंकर व बाबा केदारनाथ का जयघोष कर सभी हर्षित और आनंदित हुए। गरम जल से ठिठुरे शरीर को गरमी पहुँचाकर सभी तीर्थयात्री केदारधाम पहुँचकर बाबा केदार का दर्शन करने निकल पड़े। बाबा केदारनाथ का दर्शन कर सभी लोग अभिभूत हुए, आनंदित हुए और वहीं आचार्य शंकर तो मानो समाधिस्थ से हो गए। बाबा केदार का दर्शन पाते ही वे ध्यानमग्न, समाधिमग्न हो गए।

घंटों उसी भावदशा में बैठे रहे और फिर सामान्य भावदशा में आकर आँखें खोलीं और विधिपूर्वक भगवान भोलेनाथ का अभिषेक किया। वे प्रतिदिन केदारनाथ के मंदिर में जाते और वहाँ बैठकर पूजा करते-करते ही ध्यानमग्न हो जाते, समाधिमग्न हो जाते। उनके शिष्य भी अपनी आवश्यकताओं से निबटकर मंदिर में आ जाते और साधना में लीन हो जाते।

वे सभी कीर्तन-भजन करते और भगवान भोलेनाथ, केदारनाथ के ध्यान में लीन हो जाते। आचार्य शंकर समय पाकर वहाँ श्रद्धालुओं को धर्मोपदेश करते। इस प्रकार आचार्य शंकर लगभग एक माह तक वहीं केदारधाम में रहकर भगवान आशुतोष के ध्यान में लीन रहकर भगवान आशुतोष की आनंदानुभूति पाते रहे और तत्पश्चात अपने शिष्यों सहित गंगोत्तरी की ओर चल पड़े। ❑

मनुष्य की स्वाभाविक गति पतन की ओर होती है, प्रयत्न और पुरुषार्थ तो उत्थान के लिए करना होता है।

—परमपूज्य गुरुदेव

सादा जीवन-उच्च विचार

सादा जीवन-उच्च विचार भारतीय संस्कृति का मूलभूत सूत्र रहा है। भारतीय संस्कृति के प्रणेता ऋषिगण सादा जीवन-उच्च विचार के हिमायती थे; क्योंकि उन्होंने जीवन के तत्त्व को समझ लिया था तथा वे बाह्य जीवन की सापेक्ष सत्यता से भली भाँति परिचित थे।

मानवीय चेतना के मर्मज्ञ ऋषिगण आत्मसत्ता के सत्य से जीवन व समाज के संचालन में विश्वास करते थे। वे आरण्यकों में प्रकृति की गोद में, आश्रम में रहते थे तथा अपने गुरुकुल से लोक-परलोक को सिद्ध करने वाली शिक्षा एवं विद्या के ज्ञानयज्ञ का संचालन करते थे।

उनके त्याग-तपस्या एवं सादगी भरे सादा जीवन-उच्च विचार का प्रताप ही था कि जनमानस के हृदय में उनके प्रति विशिष्ट श्रद्धा रहती थी तथा सामान्य घर से लेकर राजघराने के बच्चे शिक्षा एवं विद्या अर्जन के लिए उनके पास आते थे। हर युग में ऋषियों के ऐसे गुरुकुलों-आश्रमों का वर्णन आता है।

त्रेतायुग में राजकुमार राम सहित भाई लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न वन में महर्षि विश्वामित्र के गुरुकुल में विद्या-अर्जन के लिए गए। इसी प्रकार द्वापर युग में सुदामा से लेकर राजकुमार श्रीकृष्ण-बलराम ने संदीपनि ऋषि के गुरुकुल में वास किया।

आज परिस्थितियाँ भिन्न हैं, लेकिन शांतिकुंज आश्रम में परमपूज्य गुरुदेव ने अखिल विश्व गायत्री परिवार को सादा जीवन-उच्च विचार की विरासत पर खड़ा किया है। युगऋषि पूज्यवर पुरातन ऋषि परंपरा के संवाहक रहे, जो जंगलों में कुटिया में रहकर साधना करते थे, न्यूनतम में निर्वाह करते हुए मानव चेतना के अनुसंधान व लोकसेवा में तल्लीन रहते थे।

आज लाखों-करोड़ों लोग इसी ऋषि-परंपरा के अंतर्गत ऋषियुग्म से जुड़कर गायत्री परिवार का अभिन्न अंग बनते हुए अपनी क्षमता एवं योग्यता के अनुरूप गुरुकार्य में, ईश्वरीय कार्य में अपना योगदान दे रहे हैं। पूज्य गुरुदेव स्वयं सादा जीवन-उच्च विचार की मूर्तिमान प्रतिमा थे। एक औसत भारतीय स्तर का जीवन उनका आदर्श था, जिसका जीवनपर्यंत हर स्तर पर उन्होंने पालन किया।

परमवंदनीया माताजी के साथ गृहस्थ तपोवन में उन्होंने न्यूनतम में निर्वाह करते हुए इस मंत्र को साधा। जो भी उनसे मिलते गए, वे उनकी सादगी के कायल होते गए। अपनी आत्मकथा हमारी वसीयत विरासत में पूज्यवर ने जीवन के सार को तीन सूत्रों में समेटते हुए, इनको रेखांकित किया है—**मातृवत् परदारेषु, परद्रव्येषु लोष्ठवत्** और **आत्मवत् सर्वभूतेषु**। इसमें सादा जीवन-उच्च विचार की ही बानगी मिलती है।

यह गुरुदेव की हमारे लिए एक महान विरासत है, जिसके पीछे गहरा दर्शन छिपा है, जिसका अपना गहरा मनोविज्ञान है। वे कहते थे—हम गरीब नहीं हैं, यह हमारी ओढ़ी हुई गरीबी है। कैसे न्यूनतम में भी निर्वाह हो सकता है, इसका प्रशिक्षण—उदाहरण के साथ हम अपने जीवन से दे रहे हैं; क्योंकि बाहर जमाना अनावश्यक दिखावे, तड़क-भड़क, फजूलखरची, फैशन व आडंबर का है, जिसके

कारण जीवन नारकीय बना हुआ है, परिवार व समाज में गलत रीतियों का प्रचलन बढ़ रहा है और वहाँ लोगों को लगता नहीं कि सादगी से भरा जीवन भी संभव है।

आज चलन दूसरों के साथ अनावश्यक प्रतिद्वंद्विता का है। धन इष्ट बन गया है, किसी भी कीमत पर रातोंरात धनवान बनने की होड़ लगी हुई है। बिना कीमत चुकाए धन-ऐश्वर्य, रोब-दाब, रुतबे व सुख-भोग को पाने का क्रम निर्बाध रूप से चल रहा है। ऐसे में पता भी नहीं चलता कि कब व्यक्ति भ्रष्टाचार में लिप्त हो गया। रोज समाचारपत्रों के पहले पन्नों में भ्रष्टाचार के नित नए रिकॉर्ड की ब्रेकिंग न्यूज आती रहती है।

क्या नेता, क्या अधिकारी व कर्मचारी, हर वर्ग इनमें संलिप्त पाए जा रहे हैं। पारिवारिक स्तर पर खरचीली शादियाँ ऐसे ही दिखावटी आडंबर का एक बड़ा उदाहरण हैं। जिसमें पड़ोसी की देखा-देखी लाखों-करोड़ों रुपये पानी की तरह बहाए जाते हैं।

इसके साथ शराब, मांसाहार जैसे आसुरी चलन और प्रोत्साहित किए जाते हैं। हर किसी के लिए ऐसी खरचीली शादियाँ अपने बूते संभव नहीं। इसके लिए जमीन को गिरवी रखने से लेकर बैंक से भारी लोन व कर्ज उठाने पड़ते हैं और फिर इनकी भरपाई किस तरह से होती है, यह भुक्तभोगी ही जानते हैं।

जीवन तनाव, अवसाद से भरी नारकीय यंत्रणा से गुजरने के लिए विवश-बाध्य हो जाता है। सादगीपूर्ण जीवन का आदर्श अपनाया होता तो ऐसी नौबत नहीं आती। पूज्य गुरुदेव ने गायत्री परिवार के साधक परिकर को ऐसे आडंबरों से मुक्त रखा है। यहाँ न्यूनतम खरचे में, सादगी भरे माहौल में विधि-विधान के साथ विवाह संस्कार का चलन प्रारंभ किया। बाहर तो पता भी नहीं चलता कि पंडित जी ने क्या मंत्र बोला व उसका अर्थ क्या है और फिर जनता को भी इसमें अधिक रुचि नहीं रहती।

उनका पूरा-का-पूरा ध्यान तो विवाह संस्कार की मूल प्रेरणा से अधिक मात्र दूलहा-दुलहन की साज-सज्जा एवं दहेज में दी जा रही विभिन्न बहुमूल्य सामग्री व साथ ही बाहरी चकाचौंध पर अधिक रहता है। वास्तव में सादे जीवन में चुनौती दो स्तर से आती है। एक होती है परिस्थितिजन्य, जिसमें समाज का दबाव प्रधान होता है। इसके चलते समाज में प्रचलित खोटे चलनों के बीच आम इनसान तिनके की भाँति उड़ने के लिए स्वयं को विवश अनुभव करता है।

उसे लगता है कि जब दुनिया में सब ऐसा ही कुछ कर रहे हैं तो हम क्यों न करें और दूसरी चुनौती आंतरिक मन:स्थितिजन्य है, जिसमें अपनी ही इच्छाएँ, आकांक्षाएँ, महत्त्वाकांक्षाएँ, भय व दुर्बलताएँ आती हैं, जिनके चलते अनौचित्य के विरोध का साहस नहीं कर पाते। फिर मन की तृष्णा, मोह-आकांक्षा तथा अहंता का कोई अंत भी नहीं। पूरा जीवन भी इनमें झोंक दिया जाए तो भी ये पूरी होने वाली नहीं।

लोगों को इनकी चपेट में अपनी आत्मा, ईमान और स्वाभिमान को झोंकते देखा जाता है और अपने ईमान को खोकर, आत्मा को बेचकर, स्वाभिमान को गिरवी रखकर यदि इनको पूरा करना पड़े तो इसे एक बहुत महँगा सौदा माना जाएगा। स्वयं को खोकर संसार में कुछ पाया, तो क्या पाया।

इसमें तात्कालिक सुख-समृद्धि, रोब-दाब और वाहवाही के दिखावे का भ्रम जरूर हो सकता है, लेकिन इसके साथ जो कर्मों का बोझ लदता है,

पुण्य क्षय होता है, जीवन में तनाव-अवसाद, भय, अशांति घर कर जाते हैं, इनके बीच दीर्घकाल में रोग-शोक, तिरस्कार एवं पतन-पराभव की पृष्ठभूमि ही तैयार होती है।

पारिवारिक स्तर पर कलह-क्लेश, तनाव-अशांति तथा सामाजिक स्तर पर ईर्ष्या-द्वेष, भ्रष्टाचार, अपराध तथा अवांछनीय चलन के शुरुआत की विडंबना साथ जुड़ती है, जो किसी सभ्य-सुसंस्कृत समाज के लिए उपयुक्त नहीं कही जा सकती। इसके चलते कितने-कितने बड़े नेता, अधिकारी, भ्रष्ट कर्मचारी जेलों की चक्की पीस रहे हैं, अपनी इज्जत खो बैठे हैं और इस सुरदुर्लभ मानव जीवन को दो कौड़ी के भाव गँवा बैठे हैं।

इस विडंबना एवं त्रासदी से उबरने का मार्ग परमपूज्य गुरुदेव ने सादा जीवन-उच्च विचार के दर्शन के अंतर्गत दिया है, जिसे उन्होंने जीवनपर्यंत जीकर दिखाया तथा इसका खुलकर स्थान-स्थान पर मार्मिक प्रतिपादन किया। शाँति, सुकून और आनंद के साथ एक सफल-सार्थक जीवनयापन इसी आधार पर संभव है और इसके साथ जो समय, ऊर्जा और मनोयोग की बचत होती है, उनके आधार पर जीवन के महत्तर कार्य संभव होते हैं, समाजसेवा का प्रयोजन सिद्ध होता है और लोकसेवा के साथ आध्यात्मिक लाभ एवं जीवन के समग्र उत्कर्ष का उच्चस्तरीय उद्देश्य पूरा होता है।

इनको देखते हुए हमारा पावन कर्त्तव्य बनता है कि गुरुदेव के जीवन व संदेश को हृदयंगम करते हुए, ऋषियुग्म द्वारा प्रवर्तित सादा जीवन-उच्च विचार की परंपरा के संवाहक बनें तथा इस सुरदुर्लभ जीवन को एक अनुकरणीय मिसाल के रूप में प्रस्तुत करें। ❑

स्वामी रामकृष्ण परमहंस केशवसेन से मिलने गए तो उन्हें देखकर बोले—"अरे! इसकी पूँछ गिर गई है।" यह सुनकर वहाँ बैठे सभी लोग हँस पड़े। पर केशवसेन जानते थे कि स्वामी रामकृष्ण परमहंस कोई भी बात अन्यथा नहीं कहते सो उन्होंने उनसे उनके कहे का अर्थ पूछा। परमहंस जी ने उत्तर दिया—"जब तक मेंढ़क के बच्चे की पूँछ नहीं गिर जाती, तब तक उसे पानी में ही रहना पड़ता है; वह किनारे से चढ़कर सूखी जमीन में विचर नहीं सकता। पर ज्यों ही उसकी पूँछ गिर जाती है, त्यों ही वह उछलकर जमीन पर आ जाता है, तब वह पानी में भी रह सकता है और जमीन पर भी। उसी तरह आदमी की जब तक अविद्या की पूँछ नहीं गिर जाती, तब तक वह संसाररूपी जल में ही पड़ा रहता है; उसके गिर जाने पर—ज्ञान होने पर, मुक्तभाव से मनुष्य विचरण कर सकता है और इच्छा होने पर संसार में भी रह सकता है।" स्वामी रामकृष्ण परमहंस के कृपाभाव का अर्थ सबको समझ आ गया।

पुलिस अदालत है आसान, किंतु अटल है ईश विधान

यह विश्व कर्म प्रधान है। हम अच्छे-बुरे जैसे भी कर्म करते हैं, उसका फल हमें भोगना ही पड़ता है। अच्छे कर्म, शुभ कर्म, पुण्यकर्म से हमें सुख प्राप्त होता है और बुरे कर्म, अशुभ कर्म, पापकर्म से हमें दुःख प्राप्त होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि कर्म ही सुख और दुःख का कारण है।

सुख और दुःख हमारे कर्मों का ही परिणाम हैं, प्रतिफल हैं। यदि हमने अच्छे कर्म किए हैं तो एक-न-एक दिन उसका सुफल, हमें प्राप्त होकर रहेगा। ब्रह्मांड में ऐसी कोई ताकत नहीं जो हमें हमारे शुभ कर्मों, पुण्यकर्मों के सुफल से वंचित कर सके। हम ब्रह्मांड के किसी भी कोने में रहते हों, हमारे सुंदर कर्मों का सुंदर परिणाम, सुख के रूप में हमें प्राप्त होकर रहेगा।

उसी प्रकार यदि हमने बुरे कर्म किए हैं अर्थात हिंसा, हत्या, व्यभिचार, दुराचार, अत्याचार, बेईमानी, भ्रष्टाचार जैसे अनैतिक और पापपूर्ण कर्म किए हैं तो हम ब्रह्मांड में जहाँ भी हों, हमारे कर्म हमारा पीछा करते रहेंगे और उन कर्मों का दुःखद परिणाम हमें न्यूटन के गति के तीसरे नियम के अनुसार मिलेगा, ठीक वैसे, जैसे प्रत्येक क्रिया की विपरीत दिशा में और समान प्रतिक्रिया होती है।

यह नियम कर्म पर भी लागू होता है। जैसे दीवार पर फेंकी गई गेंद लौटकर फेंकने वाले की ओर आती है, उसी प्रकार हमारे द्वारा किए गए कर्म हमारी ओर लौट आते हैं। हर क्रिया की प्रतिक्रिया अवश्य होती है। उसी प्रकार हमारे हर कर्म की प्रतिक्रिया होती है।

यदि कर्म शुभ है, तो उसकी प्रतिक्रिया भी शुभ ही होगी अर्थात कर्म करने वाले के जीवन में शुभ होगा, सुख होगा और यदि कर्म अशुभ है तो अशुभ कर्म की प्रतिक्रिया भी अशुभ ही होगी। और अशुभ कर्म करने वाले के जीवन में निश्चित ही अशुभ होगा, बुरा होगा, दुःख होगा।

हम कोई कर्म करते समय भले ही अकेले रहे हों, वहाँ कोई और न रहा हो, पर सर्वसाक्षी परमात्मा, सर्वव्यापी परमात्मा तो सर्वत्र व्याप्त है। वह हमारे द्वारा किए गए, किए जा रहे हर कर्म का साक्षी है, गवाह है। इसके साथ ही हमारी आत्मा भी हमारे हर कर्म की साक्षी है।

हम बुरे कर्म करते हुए दुनिया की नजर में भले ही अच्छे बने रहें, पर हमारी आत्मा तो हर पल हमारे साथ है और हमारे अच्छे-बुरे हर कर्म की साक्षी है। भला उससे हम कोई चीज छिपा भी कैसे सकते हैं। हमारी आत्मा में हमारे हर कर्म का लेखा-जोखा है। अस्तु हमारे हर अच्छे-बुरे कर्म का परिणाम एक-न-एक दिन अवश्य ही प्रकट होगा।

हाँ, कुछ कर्मों का फल तो तत्काल ही मिल जाता है, पर कुछ कर्मों का फल वर्षों बाद, भविष्य में या अगले जीवन में भी प्राप्त होता है, पर मिलता अवश्य है। बीज बोते ही बीज वृक्ष तो नहीं बन जाता। हाँ, उसे बीज से वृक्ष बनने में समय तो लगता है। हमारा हर कर्म ही बीज है, जो एक-न-एक दिन अंकुरित होता हुआ, विकसित होता हुआ वृक्ष के रूप में परिणत होगा और उस वृक्ष में सुख

और दुःख के फल लगे होंगे, जिसका भोग हमें करना ही होगा। इसे ही कर्मभोग कहते हैं।

कोई व्यक्ति यदि हर पल सुख-शांति और आंतरिक प्रफुल्लता का अनुभव करता है तो यह उसके द्वारा किए गए शुभ कर्मों का ही परिणाम है और यदि किसी व्यक्ति का जीवन दुःख, पीड़ा और वेदना से भरा हुआ है तो यह भी उसके बुरे कर्मों का ही परिणाम है। जैसे हम जहाँ भी हों हमारी आत्मा हमारे साथ होती है, वैसे ही हम जहाँ भी हों हमारे कर्म हमारे साथ होते हैं।

हमारे द्वारा किए गए कर्मों का प्रभाव, संस्कार, असर हमारे ऊपर सदैव बना होता है और कर्मों के प्रभाव के फलस्वरूप ही हमारे जीवन में सुख और दुःख घटित होते हैं। कोई व्यक्ति आत्महत्या कर लेता है, इसके पीछे भी उसके ऊपर उसके द्वारा किए गए बुरे कर्मों का ही असर होता है। उसके द्वारा किए गए बुरे कर्म ही संस्कार रूप में उसे ऐसा करने को प्रेरित करते हैं।

किसी की हत्या, दुर्घटना, आर्थिक बदहाली, अशांति आदि के पीछे भी उसके कर्मों का ही हाथ होता है। अस्तु यह तो स्पष्ट है कि हमें हमारे कर्मों से कोई भी बचा नहीं सकता है। हमारे कर्म हमारे सम्मुख सुख और दुःख के रूप में प्रकट होंगे ही। हमें जीवन में ऐसी कई घटनाएँ देखने और सुनने को मिलती हैं, जिससे हमें कर्मफल सिद्धांत में विश्वास करना ही पड़ता है। यहाँ एक ऐसी ही घटना का जिक्र करना अत्यंत प्रासंगिक है।

एक गाँव में दो व्यापारी रहते थे। दोनों में काफी दोस्ती थी। दोनों व्यापार के सिलसिले में शहर में पहुँचे। महीनों रहकर दोनों ने व्यापार में खूब मुनाफा कमाया। अंततः एक व्यापारी के मन में लालच आया और वह पूरा मुनाफा अकेले ही पाने के लिए अपने मित्र की हत्या करने का विचार करने लगा। वह उस दिन अपने दोस्त के साथ बाहर नहीं गया। अस्तु वह कमरे पर ही ठहर गया। उसने कमरे पर रहकर भोजन बनाया और उस भोजन में विष मिला दिया।

जब शाम में उसका दोस्त कमरे पर आया तो उसने वह विष भरा भोजन अपने दोस्त के लिए परोस दिया। वह दूसरा व्यापारी अपने दोस्त की साजिश से अनभिज्ञ था, इसलिए कोई शक करने की गुँजाइश ही नहीं थी। उसने अपने दोस्त को भी भोजन करने को कहा, पर जिसने उस भोजन में विष मिलाया था वह उस भोजन को कैसे करता। अस्तु उसने अपने मित्र से कहा कि मैंने पहले ही भोजन कर लिया है। तुम भोजन ग्रहण करो।

अंत में उस व्यक्ति ने विष मिला हुआ भोजन ग्रहण कर लिया और भोजन करने के एक घंटे बाद ही उसके मुख से झाग निकलने लगे। कुछ ही देर में उसके प्राणपखेरू उड़ गए। वह व्यक्ति अपने मृत दोस्त को वहीं छोड़कर भागने लगा, पर पास के ही एक व्यक्ति ने इस घटना की खबर पुलिस को दे दी। पुलिस ने खोज-बीन करनी शुरू कर दी। वह व्यक्ति गाड़ी में बैठकर गाँव भागने की फिराक में था कि तभी पुलिस ने उसे धर दबोचा।

अंततः मामला अदालत में पहुँचा। अपने आप को छुड़ाने के लिए वह व्यक्ति जुगत-जुगाड़ भिड़ाने लगा। पैसे का प्रलोभन देकर उसने पुलिस और अदालत, दोनों को अपने पक्ष में कर लिया। पुलिस अदालत में उसके खिलाफ कोई सबूत जुटा नहीं पाई; क्योंकि भोजन में विष मिलाते समय तो उसे किसी ने देखा नहीं था, इसलिए अंततः साक्ष्य के अभाव में बरी कर दिया गया।

अब जब वह अपने कमरे में लौट के आया तो वह विचार करने लगा कि रुपये के लिए उसने कैसे अपने दोस्त की हत्या कर दी। पैसे और पैरवी

के बल पर वह पुलिस-अदालत से तो बच निकला पर वह तो जानता था कि अपने दोस्त की हत्या मैंने ही की है।

किसी को पता हो न हो, पर उसे तो पता था कि हत्या मैंने ही की है। उसे घोर आत्मग्लानि हुई। उसकी सर्वसाक्षी आत्मा तो भोजन में विष मिलाते समय भी उसके साथ थी और तब भी उसके साथ ही थी, जब वह विष भरा भोजन अपने दोस्त को परोस रहा था और उस पर भरोसा करके उसका दोस्त वह भोजन ग्रहण कर रहा था।

वह अदालत से बरी हो चुका था, पर फिर भी वह किसी अज्ञात भय से भयभीत रहा करता था। किसी अनहोनी की आशंका से उसके रोम-रोम सिहर उठते थे। उसका सुख-चैन जाता रहा और अंततः चिंता और आत्मग्लानि के कारण वह नानाविध मानसिक-शारीरिक व्याधियों का शिकार होता गया।

अब व्यापार में भी उसका मन नहीं लगता। उसे उसकी देख-भाल करने वाला भी कोई नहीं रहा। असाध्य रोग का शिकार होकर वह वर्षों तक भारी पीड़ा और वेदना में किसी तरह जीवित रहा और अंततः असाध्य बीमारी के कारण ही मृत्यु को प्राप्त हुआ।

यह कहानी, यह घटना यह बताती है कि पैसे और पैरवी के बल पर पुलिस और अदालत से बचा ज़ा सकता है। साक्ष्य के अभाव में भी पुलिस और अदालत से बचा जा सकता है, बरी हुआ जा सकता है, पर ईश्वर की अदालत से बचा नहीं जा सकता; क्योंकि ईश्वर के घर में देर है, अंधेर नहीं। कर्मफल का सिद्धांत बड़ा अकाट्य है। कर्मों का फल हमें अवश्य ही भोगना पड़ता है। इस संबंध में परमपूज्य गुरुदेव ने ठीक ही कहा है कि 'पुलिस अदालत है आसान, किंतु अटल है ईश विधान।'

ईश्वर का विधान बड़ा अटल है। कर्मफल का विधान बड़ा अटल है। हमें हमारे कर्मों का फल मिलकर रहता है। इसलिए समझदारी इसी में है कि हम सदैव बुरे कर्मों से दूर रहें। बुरे कर्म करने से बचें और सदैव शुभ कर्म, पुण्यकर्म करें, जिससे हमें सुख की प्राप्ति हो, पुण्य की प्राप्ति हो।

शुभ कर्म करने से ही हमें पुण्य की प्राप्ति होती है और पुण्य से ही हमें सुख की प्राप्ति होती है। पुण्य से ही संकट में हमारी रक्षा होती है। अस्तु यहाँ यह समझना भी आवश्यक है कि जिस व्यक्ति की विष के कारण मृत्यु हुई, यदि उसके जीवन में भी पुण्य की बहुलता होती तो वह अपने दोस्त की साजिश का शिकार होने से बच सकता था, पर जीवन में पुण्य न होने के कारण उसकी रक्षा नहीं हो सकी और वह अकालमृत्यु को प्राप्त हुआ।

हमारा पुण्यकर्म ही हमारी रक्षा करता है। व्यक्ति को सदैव शुभ कर्म, पुण्यकर्म, श्रम, पुरुषार्थ, दान-पुण्य, सेवा, भगवद्भक्ति, परोपकार आदि करते रहना चाहिए, जिससे जीवन में पुण्य की प्राप्ति हो और पुण्य से सुख की प्राप्ति हो और हर संकट से हमारी रक्षा हो सके। ❑

समुद्री यात्रा कर लौटे यात्री ने गोताखोर से कहा—"भाई! मैं तो समुद्र में दूर-दूर तक घूमकर आया, पर मुझे एक मोती नहीं मिला, किंतु तुम एक डुबकी मारकर मोती निकाल लेते हो।"

गोताखोर ने उत्तर दिया—"मित्र! जीवन में सफलता उन्हें नहीं मिलती, जो बिना लक्ष्य के लंबी यात्रा करते रहते हैं; वरन उन्हें मिलती है, जो एक उद्देश्य निर्धारित कर उसी पर एकाग्रता से प्रयास करते हैं।" मूल्यवान की प्राप्ति हेतु उसी के अनुरूप अध्यवसाय करना पड़ता है।

भारतीय संस्कृति सार्वभौम और सनातन

भारतीय ज्ञान-परंपरा का मूल स्वरूप अष्टादश विद्याओं में सन्निहित ज्ञान-विज्ञान के रूप में विद्यमान है। इन विद्याओं के द्वारा जिन सूत्रों-सिद्धांतों का सृजन किया गया है, वे सभी सैकड़ों ग्रंथों का आकार प्राप्त कर हमारी आत्मज्ञान की शिखा को प्रज्वलित बनाए हुए हैं। यह ज्ञानरूपी विरासत भारतीय संस्कृति की हजारों वर्षों की यात्रा में वास्तविक चिन्मय संपत्ति है।

इसी ज्ञान-रहस्य के कारण आज तक इस संस्कृति का जीवन अक्षुण्ण बना हुआ है और आगे भी बना रहेगा। अन्य संस्कृतियों की भाँति हमारी देव संस्कृति का ध्येय कभी भी आधिभौतिक नहीं रहा है, बल्कि पूर्णत: आध्यात्मिक है। ज्ञान इसकी आत्मा है, जो अध्यात्मरूपी प्राण बनकर इसके हर कण-कण में व्याप्त है।

अध्यात्म के बिना इस संस्कृति की कल्पना करना भी असंभव है। इसका समस्त कलेवर ही अध्यात्म से ओत-प्रोत है, इसलिए समूचा विश्व भी इसे आध्यात्मिक ज्ञान के पालने के रूप में पहचानता आया है। सर्वोच्च ज्ञान की प्राप्ति हमारी संस्कृति का महानतम आदर्श है।

इस आदर्श को प्राप्त करने की चुनौती और उस पर विजय प्राप्त करने का मार्ग, दोनों इस संस्कृति से विनिर्मित सुसंस्कारित समाज की जीवनपद्धति व जीवनमूल्यों में समाहित हैं। सर्वोच्च ज्ञान का स्वरूप पूर्णत: आध्यात्मिक है, जो मानवीय आत्मा के धरातल पर ही प्रस्फुटित होता है। इस परम आदर्श को जानने और जीने की दो भिन्न धाराएँ समान-संयुक्त रूप से हमारी सांस्कृतिक यात्रा का नेतृत्व करती आ रही हैं।

एक धारा ज्ञान की है व दूसरी विज्ञान की। ज्ञान को जानने-समझने के लिए विभिन्न शास्त्रों, विधाओं का निर्माण किया गया है और उनकी श्रेष्ठतम व्याख्या-विवेचना की परंपराएँ विकसित की हैं। दूसरी धारा विज्ञान की है, जिसमें उस प्राप्य ज्ञान को जीने की कला और सुसंगत जीवनपद्धति के विविध आयामों को धर्म, कर्म, संस्कार एवं परंपराओं के रूप में स्थापित किया जाता रहा है।

ध्यान रखने योग्य बात यह है कि हमारे ऋषियों ने जिसे विज्ञान कहा है, वह वर्तमान तथाकथित भौतिक विज्ञान के सर्वथा भिन्न है। ऋषि-अवधारणा में विज्ञान का तात्पर्य है—वह ज्ञान, चिंतन अथवा सिद्धांत जो हमारे व्यवहार का, जीवन का, चरित्र का हिस्सा बन गया है अर्थात ज्ञान जब व्यवहार में आ जाता है तो वही विज्ञान कहलाता है।

ज्ञान और विज्ञान—दोनों धारा अन्योन्याश्रित, शाश्वत और चिरनूतनता के साथ हमारी सभ्यता, संस्कृति व समाज की ऐश्वर्यता, वैभव, प्रखरता और श्रेष्ठता की परिचायक हैं। अध्यात्म तत्त्व की ये दोनों विमल धाराएँ विभिन्न मार्गों से बहते हुए भारत भूमि ही नहीं, वरन समस्त विश्व-वसुधा को जीवन की उर्वरता प्रदान कर मानवता को पोषित करती आ रही हैं।

हमारे सांस्कृतिक जीवन में समाहित ज्ञान-विज्ञान के अभेदरूपी अध्यात्म तत्त्व को समझना दुनिया के लिए सहज नहीं है। दुनिया यह तो मानती रही है कि हमारी संस्कृति और हमारा देश

अध्यात्मवादियों का देश है, लेकिन दुनिया को यह भी समझना आवश्यक है कि यहाँ अध्यात्म का तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि लोग केवल आत्मबोध और आत्मचिंतन के कार्यों में निमग्न रहते हों।

इस चिंतन का शिखर तो हमारे ऋषियों ने सभ्यता के प्रारंभ से पूर्व ही प्राप्त कर लिया था। ऋग्वेद के 'नासदीय सूक्त' में इस चिंतन की गहनता को देखा जा सकता है।

सारा संसार जीवन के जिस स्थायी सुख और आनंद को पागलों की तरह खोजते-भटकते रहा है, उसे हमारे ऋषियों ने आदिकाल में ही खोजकर ब्राह्मीस्थिति, मोक्ष, निर्वाण आदि नाना रूपों में प्रस्तुत कर दिया है तो फिर यह स्वाभाविक प्रश्न उठ सकता है कि जब जीवन में गूढ़तम रहस्य और शाश्वत सुख के स्रोत को ऋषियों द्वारा खोजकर पहले ही प्रस्तुत किया जा चुका है तो अब दुनिया के खोजने लायक शेष क्या रह जाता है?

इसका उत्तर यही है कि जो खोजा जा चुका है और जिसकी सभी को आवश्यकता भी है, उस तक पहुँचने के मार्ग की खोज करना। किसी एक, दो या हजार के लिए नहीं, अपितु मानव मात्र के लिए ऐसे मार्ग की आवश्यकता है, जिस पर चलकर समूची मानव जाति को शाश्वत सुख का, परम शांति और संतुष्टि का लक्ष्य प्राप्त हो सके।

दुनिया ने स्थायी सुख-शांति और आनंद की इच्छा को तो मन में जीवंत बनाए रखा है, परंतु इसकी प्राप्ति करा सकने वाला मार्ग खोज निकालने में असफल ही रही है। भौतिकवाद, भोगवाद और वैज्ञानिक क्रांति के साधन-संसाधनों के उच्चतम विकास ने भी अंतर्मन में दबी इच्छा एवं भावना को कोई सार्थक लाभ नहीं पहुँचाया है, बल्कि इसके उलट अशांति, असंतुष्टि, निराशा और अनेक दुःखदायी स्थितियों को उत्पन्न कर डाला है। जीवन में सुख-शांति, संतुष्टि और आनंद की तलाश यथावत् बनी हुई है।

सारी मानवता इसके लिए लालायित नजर आती है, परंतु उसके पास ऐसा कोई मार्ग नहीं जिस पर चलकर इच्छित लक्ष्य प्राप्त कर सके। इस संदर्भ में सारी दुनिया को यह बताना आवश्यक है कि जिस मार्ग की तलाश की जा रही है, वह मार्ग हमारी ऋषि संस्कृति और जीवनपद्धति में पहले से विद्यमान है। इसका अनुसरण कर दुनिया का प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में चिरस्थायी सुख, आनंद और संतुष्टि को प्राप्त कर सकता है।

भारतीय संस्कृति में जीवनपद्धति का निर्माण जिन आदर्शों और मूल्यों को आधार बनाकर किया गया है, उस पर चलने वालों को जीवन का चरम लक्ष्य मिलना सुनिश्चित है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण भारतभूमि के आद्यतन इतिहास में महापुरुषों, महामानवों व महान व्यक्तित्वों का जीवन-दर्शन है, जिन्होंने हर युग में स्वयं को आदर्श बनाकर विश्वमानवता का मार्गदर्शन किया है।

भारतीय संस्कृति के पोषण के लिए हमारे ऋषियों ने जिस जीवनपद्धति का निर्माण किया है, वह आध्यात्मिक जीवन-दृष्टि पर आधृत एक संपूर्ण जीवन विज्ञान है। शास्त्रों में मनुष्य के चतुर्वर्ग, पुरुषार्थ, वर्णाश्रम, धर्म-कर्म, कर्त्तव्य आदि की विशद व्याख्याओं में अध्यात्म विज्ञान की ही प्रस्तुति है।

मानवीय जीवन की समस्त क्रियाशीलता और संभावनाओं को चार भागों में विभाजित कर पुरुषार्थ का सिद्धांत दिया गया। यह सिद्धांत हमारी जीवनपद्धति का मूल आधार है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूपी पुरुषार्थ की चर्चा प्रायः सभी दर्शनों, धर्मशास्त्रों, इतिहास ग्रंथों, महाकाव्य, स्मृति एवं पुराणों में विस्तार से की गई है।

इस विस्तृत विवेचना में ऋषियों के अध्यात्म विज्ञान के सूक्ष्म एवं मार्मिक पहलुओं को किस प्रकार मानवीय वृत्ति, कर्म, आचरण एवं चरित्र के स्तर पर समाहित कर एक समग्र जीवनपद्धति

विनिर्मित की गई है, इस सत्य का अनावरण किया गया है।

ललित कलाओं से लेकर आयुर्वेद, धनुर्वेद, शल्यविद्या, रसायन शास्त्र, नक्षत्र विद्या, गणित विद्या, काव्य, नाटक, साहित्य, संगीत आदि अनेक विधाओं में मानवीय रचनात्मकता और सृजनशीलता के विकसित रूप को भारतीय जीवनपद्धति की समग्रता में देखा जा सकता है।

हमारी संस्कृति की जीवन-दृष्टि आध्यात्मिक अवश्य है, परंतु उस पर आधृत जीवनपद्धति में अध्यात्म और आधिभौतिक जीवन का सार्थक एवं अनुपम समन्वय है।

ज्ञान के साथ कर्म, योग के साथ भोग और अध्यात्म के साथ विज्ञान का समन्वय इसे विश्व की महानतम संस्कृति बनाते हैं। यह समन्वय, ज्ञान को आचरण में, व्यवहार में लाने की उत्कृष्ट तकनीकों के रूप में व्यक्ति, समाज और संस्कृति के जीवन में घुला-मिला है। इसमें समाहित सूक्ष्म मानवीय मनोविज्ञान को भी दुनिया को समझना आवश्यक है।

जैसे चार पुरुषार्थ व्यक्ति के जीवन-मार्ग का आदर्श हैं, उसी प्रकार समाज और समष्टि के कल्याण का आदर्श मार्ग चार आश्रमों के रूप में विद्यमान है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास—ये सार्वभौमिक मानवता की प्रतिष्ठा एवं कल्याण के ऋषिप्रणीत स्वर्णिम सूत्र हैं।

मानव जीवन के उक्त चार सोपानों में विश्व समाज के सर्वांगीण विकास, संतुलन और परम कल्याण का मनोविज्ञान गुँथा हुआ है। सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य आश्रम अर्थात जीवन प्रारंभ के प्रथम चरण में शरीर, मन और बुद्धि को शुद्ध और संवर्द्धित कर एक आदर्श व्यक्तित्व और क्षमतावान, उपयोगी जीवन का निर्माण करना है।

दूसरे चरण में साधन-संसाधन और इच्छित कामनाओं की धर्मानुकूल वृद्धि और उपभोग तथा परिवार, समाज और राष्ट्र से जुड़े सभी कर्त्तव्यों का नैतिक रूप से पालन करना होता है।

तीसरे सोपान में घर-परिवार की जिम्मेदारियों से बाहर निकलकर अपने अनुभव और चिंतन को समाज में निस्स्वार्थ भाव से बाँटना होता है, ताकि उनके सांसारिक जीवन के दुःख, कष्ट और उलझनों को कम कर सही दिशा प्रदान की जा सके।

चतुर्थ चरण है आत्मसिद्धि का, विज्ञान जगत् से ज्ञान जगत् में प्रवेश करने का। यह योग, त्याग, वैराग्य, भक्ति और निवृत्ति का सोपान है। यहाँ पहुँचकर मनुष्य जीवन अपनी संपूर्णता में विकसित हो उठता है।

शाश्वत सुख, परम शांति, पूर्ण संतुष्टि और चरम सत्य की प्राप्ति कराने वाला विज्ञान हमारी जीवनपद्धति के केंद्र में स्थित है। मानवीय स्वभाव और मनोविज्ञान को ध्यान में रखते हुए ही हमारे ऋषियों ने एक आदर्श जीवनपद्धति का निर्माण कर प्रत्येक मनुष्य के लिए सार्थक जीवन जीने का मार्ग सृजित किया है।

इस मार्ग पर चलकर ही भारतीय संस्कृति विश्व में इतनी महान और उदात्त बन पाई है। यह जीवनपद्धति महज एक जीने का तरीका या व्यवस्था मात्र न होकर जीवन के उत्कृष्टतम विकास का विज्ञान है।

पुरुषार्थ के चार स्तंभ, वर्णाश्रम के चार सोपान, संस्कारों के सोलह अनुबंध और जीवनपर्यंत के व्रत, पर्व, त्योहार जैसी दिव्य परंपराएँ—इन सभी में अध्यात्म-विज्ञान समाहित है।

हमारी संस्कृति का सर्वस्व एक श्रेष्ठतम और सर्वोत्कृष्ट संपूर्ण जीवन विज्ञान का पर्याय है। भारत भूमि के अध्यात्मवादी जीवन में शास्त्रों के रूप में मानवीय ज्ञान का शिखर मौजूद है और संस्कृति के रूप में मानवीय विज्ञान की व्यापकता भी विद्यमान है। यह एक सार्वभौम सत्य है कि यहाँ के शास्त्र और संस्कृति की आवश्यकता समस्त मानवता के लिए वरेण्य है। ❑

प्लास्टिक कचरे की विभीषिका और समाधान की राह

आज प्लास्टिक जीवन का अभिन्न अंग बन चुका है, इसके बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। रोजमर्रा के जीवन में उपयुक्त हो रही अधिकांश चीजें प्लास्टिक की बनी हुई हैं। बीसवीं सदी में ईजाद प्लास्टिक की मात्रा आज इस कदर बढ़ चुकी है कि पर्यावरण के लिए यह एक गंभीर संकट बनता जा रहा है।

हमारे जलवायु एवं खाद्य पदार्थों में संक्रमित होते हुए यह इस धरती पर जीवन के लिए एक खतरा बनता जा रहा है, जिसकी विकरालता एवं संभावित समाधान पर विचार अपेक्षित हो जाता है। एक सर्वेक्षण के अनुसार, वर्ष 2022 में एक भारतीय ने औसतन 20 किलो प्लास्टिक कचरा पैदा किया।

प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के अनुसार, देश के कुल कचरे में 8 प्रतिशत प्लास्टिक रहता है। यह आँकड़ा देखने में भले ही कम लग सकता है, लेकिन इसकी निरंतर बढ़ती मात्रा और इसके सैकडों वर्षों तक वातावरण में बने रहने की प्रकृति के कारण, यह एक बड़ा खतरा बनता है। मालूम हो कि प्लास्टिक को अपघटित होने में 450 से 1000 वर्ष लग जाते हैं।

आईआईएससी बैंगलोर की जनवरी—2023 की रिपोर्ट के अनुसार, वर्ष—2016 से लेकर 2020 तक भारत में प्लास्टिक का उपयोग हर वर्ष 9.7 प्रतिशत की दर से बढ़ा है। यह 1.4 करोड़ टन से बढ़कर 2 करोड़ टन पहुँच चुका है। इसमें से मात्र 34 लाख टन प्लास्टिक ही रिसाइकल हो रहा है। शेष प्लास्टिक धरती में दफनाया जा रहा है या नदी, झील व समुद्र में फेंका जा रहा है।

आश्चर्य नहीं कि नदियाँ प्लास्टिक से प्रदूषित हो रही हैं। विश्व की सबसे प्रदूषित 10 नदियों में एक पावन गंगा में प्लास्टिक प्रदूषण अपना प्रभाव दिखा रहा है। यह तथ्य दक्षिण बिहार केंद्रीय विश्वविद्यालय और पटना विश्वविद्यालय के अध्ययनकर्त्ताओं के शोध से स्पष्ट हुआ है, जहाँ गंगा नदी में प्राकृतिक रूप से मिलने वाली मछलियों के 515 नमूनों में मांसपेशियों, लिवर, गिल्ज आदि की जाँच की गई।

इनमें 11 प्रतिशत अर्थात हर 10 में से एक मछली में प्लास्टिक मिला, जो 3 से लेकर 56 तक छोटे-बड़े टुकड़ों में था। इसका औसत आकार 4 एमएम था। रिपोर्ट की मानें तो प्लास्टिक प्रदूषण मछलियों के भोजन और जल में बेहद खतरनाक स्तर पर है और यह एक तथ्य है कि देश में प्रतिबंधित होने के बावजूद सिंगल यूज श्रेणी का प्लास्टिक नदियों व झीलों में सबसे अधिक पहुँच रहा है।

मछलियों में मिले अधिकतर प्लास्टिक के टुकड़े हरे या सफेद रंग के थे। मछलियाँ इनको भोजन समझकर खाने लगी हैं। मछलियों की 9 प्रजातियों पर अध्ययन किया गया था, जिनमें से 3 में सबसे अधिक प्लास्टिक मिला, जिनका उपयोग मानव द्वारा सबसे अधिक किया जाता है। स्वाभाविक है कि ऐसे में यह माइक्रोप्लास्टिक मानव शरीर तक भी पहुँच रहा है।

इस तरह प्राकृतिक रूप से मिल रही मछलियों का जीवन भी अब सुरक्षित नहीं रह गया है। नेशनल प्रॉडक्टिविटी काउंसिल ने यूनाइटेड नेशन्स

एनवायरनमेंट प्रोग्राम के साथ मिलकर गंगा तट पर बसे हरिद्वार, आगरा और प्रयागराज जैसे शहरों के किनारे प्लास्टिक प्रदूषण के स्रोत की पड़ताल की।

रिपोर्ट के अनुसार, 25 प्रतिशत प्लास्टिक कचरा न तो रिसाइकल होता है और न ही उसका सही ढंग से निस्तारण हो पाता है। यह कचरा शहर के प्रमुख स्थानों पर फेंका जाता है, जो बारिश के साथ बहकर नदियों में जा मिलता है। नदियाँ इस कचरे को समुद्र तक बहा ले जाती हैं, जिसमें प्लास्टिक के पैकेट, बोतल, चम्मच, नायलॉन के बोरे और पॉलिथीन बैग आदि शामिल रहते हैं। यह भारत भर की नहीं, बल्कि पूरे विश्व की स्थिति है। परिणामस्वरूप पृथ्वी का दो-तिहाई भाग समुद्र, प्लास्टिक कचरे की भयावह चपेट में है।

इस समय 269 हजार टन प्लास्टिक समुद्र में तैर रहा है, जो लगभग 4 अरब माइक्रो फाइबर प्रति वर्गकिमी समुद्र में अपना स्थान बना चुका है। विश्व का लगभग 70 प्रतिशत प्लास्टिक कचरा सागर में जाता है और यदि यही स्थिति रही तो 2050 तक मछलियों से अधिक सागर में प्लास्टिक होगा। जिसके विकट परिणाम हमें कल भोगने होंगे।

वर्तमान में इस तरह के प्रदूषण से सागर का तापमान 0.6 डिगरी बढ़ चुका है, जिससे 20 प्रतिशत समुद्री जीवन संकट में है। सागर के 30 प्रतिशत हिस्से में अम्ल की मात्रा अधिक हो चुकी है। यही स्थिति रही तो यह तापमान एक डिगरी से अधिक बढ़ जाएगा, जिसे एक बड़े प्राकृतिक कहर के रूप में हम सबको झेलना होगा। हजारों प्रकार के समुद्री पक्षी पहले ही अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे हैं और बढ़ते प्लास्टिक के कारण कछुओं, सील्स और स्तनपायी जीवों का अस्तित्व खतरे में है। वास्तव में प्लास्टिक सागर के पानी में माइक्रो-प्लास्टिक में बदल जाता है, जिसे समुद्री जीव अपना भोजन समझकर खा जाते हैं।

एक शोध के अनुसार इस समय सागर में लगभग 150 से 510 खरब टुकड़े तैर रहे हैं। आलम यह है कि सागर का कोई भी हिस्सा इससे अछूता नहीं है, भू-मध्य रेखा से लेकर ध्रुव तक और आर्कटिक सागर से लेकर समुद्री तटों तक आज हर जगह प्लास्टिक फैला पड़ा है। एक शोध-सर्वेक्षण के अनुसार, कैलिफोर्निया के बाजार में बिकने वाली मछलियों की आँतों में बहुत अधिक प्लास्टिक के माइक्रोफाइबर्स पाए गए हैं।

इसी तरह समुद्री कछुआ तैरते प्लास्टिक को भोजन समझकर खा जाता है, जो इनकी आँतों को बरबाद कर रहा है। यही स्थिति समुद्री पक्षियों की है। अनुमान है कि लगभग 60 प्रतिशत पक्षी बहुत अधिक प्लास्टिक का सेवन कर चुके हैं और यदि यही गति रही तो 2050 तक 99 प्रतिशत समुद्री पक्षी प्लास्टिक का सेवन कर चुके होंगे और इनका अस्तित्व अधिकांशत: विलुप्ति के कगार पर होगा।

दक्षिण एशियाई देशों के तटों पर माइक्रोप्लास्टिक प्रदूषण पर फरवरी—2023 में आई मलेशियाई अध्ययनकर्त्ताओं की रिपोर्ट के अनुसार, समुद्र में घुला प्लास्टिक भारत के तटों को प्रदूषित कर रहा है। दक्षिण भारत के प्रमुख तटों पर माइक्रोप्लास्टिक फैला पड़ा है। सबसे बदतर स्थिति चेन्नई जैसे बड़े शहरों के किनारे के तटों पर है, जहाँ शहर और समुद्र दोनों ओर से माइक्रोप्लास्टिक आ रहा है।

शोधकर्त्ताओं को चेन्नई, कर्नाटक, पुडुचेरी, केरल, ओडिशा और दक्षिण अंडमान तटों पर माइक्रोप्लास्टिक मिला है। यह प्लास्टिक फाइबर, छोटे-बढ़े टुकड़े, फिल्म आदि के रूप में है। इसके दोतरफा नुकसान प्रत्यक्ष देखे जा रहे हैं। यह पर्यटन

उद्योग को नुकसान पहुँचा सकता है, ऐसे में पर्यटकों की संख्या कम हो सकती है। दूसरा मानव स्वास्थ्य के लिए खतरा बन सकता है; क्योंकि समुद्री तट पर भारी मात्रा में नमक तैयार होता है, इस नमक में माइक्रोप्लास्टिक घुलकर मानव शरीर में प्रवेश कर रहा है।

ज्ञात हो कि समुद्र से तैयार होने वाले नमक में भी माइक्रोप्लास्टिक की मात्रा बढ़ रही है। एक शोध के अंतर्गत तमिलनाडु के 8 जिलों से नमक के नमूने एकत्र किए गए, जिनको तटों पर समुद्री जल से तैयार किया जाता था।

जाँच में एक किलोग्राम में 50 से अधिक प्लास्टिक के कण विद्यमान पाए गए, जो फाइबर, नायलॉन, थर्मोप्लास्टिक और छोटे टुकड़ों के रूप में थे। वर्ष—2023 में हुई इस रिपोर्ट से स्पष्ट हुआ कि नमक में माइक्रोप्लास्टिक तेजी से बढ़ रहा है और मनुष्य शरीर में प्रवेश भी कर रहा है। नमक में पहली बार एक्रिलिन, एक्रेलोनाइट्राइल ब्यूटाडाइन स्टाइरीन, हाई डेंसिटी पॉलीएथिलीन आदि माइक्रोप्लास्टिक मिलने की पुष्टि हुई है।

मनुष्य शरीर में प्रवेश होने पर ये प्लास्टिक कण आँतों को सबसे अधिक नुकसान पहुँचा रहे हैं और ये दीर्घकाल में गंभीर रोगों का कारण बन सकते हैं। इस तरह हवा, पानी, मिट्टी और पूरे परिवेश में तेजी से घुल रहा प्लास्टिक धरती पर अस्तित्व के लिए खतरा बन चुका है। एक अनुमान के अनुसार पूरे विश्व में इतना प्लास्टिक हो चुका है कि इससे पूरी पृथ्वी को पाँच बार लपेटा जा सकता है।

हमारे भोजन व शरीर से लेकर प्राकृतिक संपदा को विषाक्त करते माइक्रोप्लास्टिक के खतरे से जूझने व इसे रोकने के लिए संयुक्त राष्ट्र ने इस वर्ष विश्व पर्यावरण दिवस (5 जून) के दिन प्लास्टिक प्रदूषण के लिए समाधान तलाशने की थीम दी थी।

समाधान का एक ही उपाय है कि प्लास्टिक का उपयोग कम करें व इसे धीरे-धीरे बंद करें। इसके वैकल्पिक उत्पादों का उपयोग करें। सरकारों का भी कर्त्तव्य बनता है कि इस दिशा में ठोस कदम उठाएँ।

हालाँकि वर्ष—2019 में सरकार ने सिंगल यूज प्लास्टिक को समाप्त करने का संकल्प लिया था। साथ ही प्लास्टिक कचरे के पृथक्करण, संग्रहण और निपटाने की दिशा में बुनियादी ढाँचे को मजबूत करने का प्रयास जारी है, लेकिन ये प्रयास जनता की जागरूक भागीदारी के बिना अपनी निर्णायक परिणति तक नहीं पहुँच सकते।

अतः हर नागरिक का कर्त्तव्य बनता है कि वह एक जिम्मेदार व समझदार नागरिक की भाँति प्लास्टिक की विभीषिका को समझते हुए, इसके प्रति अधिकतम लोगों को जागरूक करे तथा इसके समाधान में अपना यथासंभव सहयोग दे। ❑

पेड़ की एक डाल पर तोता और दूसरी डाल पर बाज बैठे थे। तोते को देख बाज अकड़कर बोला—''अरे तोते! अच्छा है कि मेरा पेट भरा है, नहीं तो मैं क्षण भर में तेरे टुकड़े कर दूँ, पर तू ऐसे दुस्साहस के साथ मेरे सामने खड़ा है।''

तोते ने कहा—''आप ठीक कहते हैं कि आप मुझसे ज्यादा शक्तिशाली हैं, पर शक्ति की शोभा दुर्बल पर जोर दिखाने में नहीं, गिरे हुओं को उठाने में होती है। भक्षण तो कोई भी कर सकता है, पर रक्षण करना बलवान का दायित्व है।'' बात बाज की समझ में आई और उसकी समझ में परिवर्तन आ गया।

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—176

प्रज्ञावतार—युगावतार

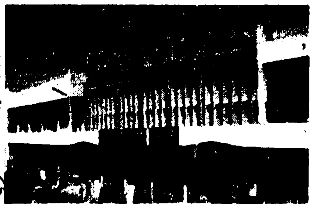

भारतीय संस्कृति का मूल स्वरूप धर्म और अध्यात्म तत्त्व से अभिपूरित है। ईश्वरविश्वास और आस्तिकता का गुण इसकी जीवनचर्या का अनिवार्य पहलू है। सर्वोच्च सत्ता ईश्वर को सर्वज्ञ मानकर सृष्टिकर्त्ता, नियामक और संचालनकर्त्ता के रूप में स्वीकारने की धारणा एवं मान्यता यहाँ सदैव प्रबल रही है।

ईश्वररूपी सर्वोच्च चेतना जब जीवन और सृष्टि में उत्पन्न असंतुलन व असामंजस्य को दूर करने के लिए हस्तक्षेप करती है तो उसे अवतारी चेतना कहा जाता है। अवतारी चेतना का प्रकटीकरण तभी होता है, जब जीवन की स्वाभाविक गतिविधियों में प्रचुरता से विसंगतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं तथा उन्हें हटाया जाना या उनका निराकरण आवश्यक हो जाता है।

इसी तथ्य को हमारे धर्मशास्त्रों में कहा गया है कि जब-जब वसुधा पर धर्म की हानि होती है, तब-तब ईश्वर धर्म की पुनर्स्थापना के लिए अवतरित होते हैं। ईश्वरीय चेतना के अवतार रूप में प्रकट होने के पीछे दो प्रमुख उद्‌देश्य अंतर्निहित रहते हैं। पहला—मौजूद समस्याओं, विसंगतियों, बुराइयों को दूर करना तथा दूसरा—आने वाली पीढ़ी के लिए नए मूल्य, नई परंपराओं व कल्याणकारी प्रेरणाओं का बीजारोपण करना।

इन दोनों विशेषताओं से परिपूर्ण व्यक्ति, व्यक्तित्व और विचारों की सुदीर्घ परंपरा हमारी संस्कृति की महान विरासत है। यहाँ प्राचीनकाल से लेकर आज तक अनेक विशिष्ट अवतारों ने जन्म लेकर तत्कालीन युग को कल्याणकारी नेतृत्व प्रदान किया है।

यद्यपि विश्व की अनेक आस्तिकतावादी संस्कृतियों में भी अलग-अलग रूपों में अवतारी चेतना के प्रकटीकरण की परिकल्पना मौजूद रही है तथापि भारतीय सनातन संस्कृति में इसकी जड़ें ज्यादा गहरी, प्राचीन, समृद्ध व व्यापक हैं। अवतारवाद से जुड़ी हमारी मूलभूत धारणाओं-आस्थाओं तथा विशिष्टताओं को आधार बनाकर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के दर्शनशास्त्र विभाग के अंतर्गत एक महत्त्वपूर्ण शोधकार्य संपन्न किया गया है।

सनातन संस्कृति की अवतार-परंपरा में प्रज्ञावतार के रूप में सर्वथा एक नए अवतार की संबद्धता और प्रासंगिकता को तथ्यात्मक रूप से प्रस्तुत करने वाला यह शोध अध्ययन हमारी सांस्कृतिक-धर्मचेतना के युगानुरूप नूतन आयाम को प्रकट करता है।

शोध का विषय है—**अवतार-परंपरा में प्रज्ञावतार की प्रासंगिकता पर एक विवेचनात्मक अध्ययन**। इस विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण शोध अध्ययन को वर्ष—2020 में शोधार्थी चंद्रमणि शुक्ल द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं डॉ० शशिकला साहू के निर्देशन में पूरा किया गया है। सैद्धांतिक एवं विवेचनात्मक विधि पर आधृत इस अध्ययन को शोधार्थी द्वारा कुल पाँच अध्यायों में विभाजित कर प्रस्तुत किया गया है।

प्रथम सोपान में विभिन्न धर्मों एवं दार्शनिक विचारधाराओं में प्रस्तुत अवतारसंबंधी मतों की विवेचना की गई है। शाब्दिक व्युत्पत्ति की दृष्टि से अवतार का अर्थ है उच्च स्थान से नीचे स्थान पर उतरना अर्थात जब परमात्मा अपने सच्चिदानंद स्वरूप की स्थिति से उतरकर अपनी ही लीला अथवा माया-क्षेत्र में ऋषियों की भाँति निर्लिप्त जीवनलीला करते हैं तो वे अवतार कहे जाते हैं। देश-काल-परिस्थितियों के अनुसार नाम, रूप, विशेषताओं में भिन्नता हो सकती है, किंतु सभी अवतारों में उसी परमात्मचेतना का प्रकटीकरण होता है।

भारतीय संस्कृति में अवतार को परमात्मा की चेतना का ही पर्याय माना गया है। वेदांत रत्नमंजूषा में उल्लेख है—'**अवतारो नाम स्वेच्छया धर्म स्थापनार्थमधर्मोपशमनार्थ स्वकीयानाम् इच्छार्थं च विविध विग्रहै आविर्भावं विशेषः।**' अर्थात परमात्मारूपी सर्वेश्वर जब अपनी इच्छा से धर्म की स्थापना और अधर्म का नाश करने के लिए तथा भक्त जनों की इच्छापूर्ति हेतु विविध विग्रहों, स्वरूपों में प्रकट होते हैं, तब वे ही अवतार कहलाते हैं।

रामायण एवं श्रीमद्भगवद्गीता में भी अवतार के संदर्भ में यही विचार प्राप्त होते हैं। परमपूज्य गुरुदेव के अनुसार जब संसार में असामान्य स्तर की विपन्नताएँ उत्पन्न हो जाती हैं तो उनका समाधान करने के लिए स्रष्टा को स्वयं सक्रिय होना पड़ता है और असाधारण कार्य संपन्न करना पड़ता है। यही अवतार-प्रक्रिया है। अवतार युगधर्म को आधार बनाकर सामयिक समस्याओं का संपूर्ण समाधान करते हैं।

अध्ययन का द्वितीय सोपान है—'प्रज्ञावतार की पृष्ठभूमि।' इसके अंतर्गत प्रज्ञावतार का अर्थ एवं अवधारणा, प्रज्ञावतार का स्वरूप, प्रयोजन की विवेचना करते हुए प्रज्ञावतार के संदर्भ में स्वामी रामकृष्ण परमहंस, श्रीअरविंद व महर्षि रमण के योगदान को प्रस्तुत किया गया है। परमपूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य के जीवन दर्शन का सार-प्रज्ञावतार है।

प्रज्ञा का तात्पर्य है सद् व असद् में भेद जानने वाली बुद्धि। यह बुद्धि तर्क और विचार से ऊपर प्रखर विवेक और ऋतंभरा प्रज्ञा के रूप में विकसित होती है। प्रज्ञा को साधने, प्राप्त करने का मार्ग गायत्री-साधना का अवलंबन है।

साधारण अर्थों में प्रखर विवेक की प्राप्ति के लिए सद्बुद्धि के मार्ग पर चलना ही गायत्री-साधना का मर्म है। पूज्यवर ने इसे युगशक्ति कहा है। वर्तमान की समस्त समस्याओं के मूल में दुर्बुद्धि व दुर्भावना है, जिसका एकमात्र समाधान युगशक्ति गायत्री का, सद्बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी का आह्वान है।

प्रज्ञावतार का केंद्र परमपूज्य गुरुदेव द्वारा संस्थापित युग निर्माण मिशन है, जो विचारक्रांति-अभियान के माध्यम से आत्मपरिष्कार और सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन की सैकड़ों गतिविधियों को विश्वसमाज में निरंतर प्रसारित कर रहा है। मनुष्य में देवत्व के उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण—जैसे महान लक्ष्य को जिस अवतारी चेतना की आवश्यकता है, वही चेतना प्रज्ञावतार के रूप में हमारे सम्मुख प्रकट हुई है।

देश-विदेश की धरती पर कोने-कोने में फैले गायत्रीसाधक इस अवतारी चेतना के प्रकाश को सद्बुद्धि एवं सद्विचार के रूप में बाँटते हुए प्रत्यक्ष देखे जा सकते हैं। करोड़ों-करोड़ की संख्या में विश्वसमाज में फैले इन गायत्री परिजनों को प्रज्ञावतार के सच्चे उत्तराधिकारी के रूप में देखा जा सकता है।

प्रज्ञावतार के पीछे संलग्न युगशक्ति का प्रकटीकरण इस युग की दुर्लभ घटना और महाक्रांति है। पिछली शताब्दियों में प्रकटे महापुरुषों ने अपनी दिव्यदृष्टि से इस युग में महाप्रज्ञा के अवतरण की संभावना को पहले ही प्रकट कर दिया था। रामकृष्ण के अवतरण की संभावना को पहले ही प्रकट कर दिया था।

रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, श्रीअरविंद, महर्षि रमण जैसे अध्यात्मवेत्ताओं ने इस युग के लिए जो कहा है, वह प्रज्ञावतार की प्रक्रिया में शब्दश: साकार दिखाई देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो उन महापुरुषों ने मिलकर ही इसकी पृष्ठभूमि तैयार की हो व विश्वमानवता को प्रज्ञावतार के आगमन का संदेश सुनाया हो।

तृतीय सोपान है—'चेतना के सूत्रसंचालक पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व।' इस सोपान में आचार्य जी का असाधारण जीवनवृत्त एवं उनके व्यक्तित्त्व के बहुआयामी स्वरूप की विस्तृत विवेचना की गई है।

इसके साथ ही आचार्य जी द्वारा ऋषि परंपराओं को पुनर्जागरण व भारतीय संस्कृति के नवोन्मेष हेतु क्रियान्वित किए गए प्रकल्पों को प्रस्तुत करते हुए उनके कार्यों में संयुक्त रही माता भगवती देवी शर्मा के जीवन परिचय को प्रस्तुत किया गया है।

पूज्य गुरुदेव का जन्म आगरा जनपद, उत्तर प्रदेश के आँवलखेड़ा ग्राम में 20 सितंबर, 1911 में हुआ एवं महाप्रयाण गायत्री जयंती 1990 में। इस जीवनकाल में उन्होंने सामान्य मानवीय पुरुषार्थ से कई गुना ज्यादा और व्यापक कार्य किया, जिसकी साधारण बुद्धि से गणना नहीं की जा सकती है।

जनसामान्य की जिज्ञासा एवं अध्येताओं के अवगाहन एवं अनुशीलन की दृष्टि से आचार्य जी के जीवन काल को इस अध्ययन में चार प्रमुख पहलुओं में प्रस्तुत किया गया है। पहला—बाल्यकाल और उससे जुड़ी विशिष्टताएँ, दूसरा—आध्यात्मिक तपश्चर्या, साधना और ऋषितुल्य व्यक्तित्व का निर्माण, तीसरा—आचार्य जी द्वारा विश्वव्यापी युगनिर्माण मिशन का सूत्रपात, लेखन एवं विचारक्रांति के रूप में युगनेतृत्व में समर्थ तंत्र का विकास एवं संचालन करना है। चतुर्थ पहलू प्रज्ञावतार की युगचेतना को साकार बनाने में समर्थ संस्थानों की स्थापना एवं विराट गायत्री परिवार के रूप में करोड़ों प्रशिक्षित लोगों को समाज में छाई पीड़ा-पतन के निवारण व सत्प्रवृत्तियों के संवर्द्धन कार्यों में पूर्णरूपेण नियोजित करना है।

संस्कृति पुरुष के रूप में उन्होंने, हमारी संस्कृति की प्राचीन ऋषि-परंपराओं का अपने अभियान में पुनर्बीजारोपण किया और आर्ष साहित्य की युगानुरूप व्याख्या कर सनातन सिद्धांतों के प्रकाश में युग निर्माण की नींव तैयार की तथा तपोनिष्ठ बनकर गायत्री तत्त्व की शक्ति से गायत्री परिवार के रूप में विश्वव्यापी विराट संगठन खड़ा कर दिया। उनके ऋषि जीवन के आयाम ही उन्हें प्रज्ञावतार के साकार रूप में अभिव्यक्त करते हैं।

अध्ययन का चतुर्थ सोपान है—अवतार-परंपरा के दृष्टिकोण से आचार्यश्री के कार्यों की विवेचना। इसके अंतर्गत आचार्य जी के विचारक्रांति-अभियान के मूलभूत आयाम, कार्य प्रणाली, सप्त आंदोलन तथा आध्यात्मिक साम्यवाद की दिशा में संचालित सुधारात्मक क्रियाकलापों की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की गई है।

मानवीय चिंतन और आस्था को निकृष्टता से उत्कृष्टता की ओर मोड़ देने का नाम विचार क्रांति है। यह आचार्य जी द्वारा प्रवर्तित मन:स्थिति के रूपांतरण से परिस्थितियों में आमूलचूल परिवर्तन

उत्पन्न कर चहुँओर सुखद वातावरण उत्पन्न करने वाली इस युग की एक महान और अद्वितीय क्रांति है।

इसका मूल उद्देश्य मनुष्य के मस्तिष्क में छाए कुविचारों, दुश्चिंतन और दुर्बुद्धि के स्थान पर सद्बुद्धि-सद्विचारों का बीजारोपण करना है तथा मानवीय अंत:करण की दुर्भावनाओं व संकीर्णताओं को दूर कर मानव संवेदना से ओत-प्रोत नए समाज का नवनिर्माण करना है।

इस क्रांति का आधार व्यक्ति निर्माण से प्रारंभ होकर क्रमशः परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्वनिर्माण है और इसकी प्रक्रिया में नैतिक, बौद्धिक, सामाजिक और आध्यात्मिक क्रांति की व्यावहारिक तकनीकें सम्मिलित हैं।

ऋषितंत्र का संरक्षण और आद्यशक्ति गायत्री का संबल तथा आचार्य जी की तपश्चर्या ही विचार क्रांति का प्राण-प्रवाह है। इसकी जीवंतता व सक्रियता को प्रमाणित करने वाले करोड़ों गायत्री परिजन देश-विदेश में प्रत्यक्ष देखे जा सकते हैं।

इस शताब्दी के सर्वाधिक व्यापक और महान अभियानों में यह अग्रणी और अद्वितीय है। विश्वमानवता का कल्याण और सार्वभौमिक उत्थान के महान लक्ष्य को लेकर गतिशील विचार क्रांति के स्वरूप में प्रज्ञावतार के साकार होते आयाम स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं।

पाँचवाँ सोपान है—वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रज्ञावतार की प्रासंगिकता। इसके अंतर्गत वर्तमान युग की सभी प्रमुख समस्याओं के समाधान के परिप्रेक्ष्य में प्रज्ञावतार की महत्ता का विवेचन किया गया है तथा इस अवतार के प्रभाव से भविष्य में होने वाले क्रांतिकारी परिवर्तन और विश्वशांति की स्थापना में प्रज्ञावतार की भूमिका को प्रस्तुत किया गया है।

अध्ययन में जिन समस्याओं के समाधान का विवेचन किया गया है; वे हैं—आस्था संवर्द्धन, महिला सशक्तीकरण, राजनीतिक स्थिरता, परिवार संस्था का संतुलन, पर्यावरण संतुलन, राष्ट्रीय सुरक्षा एवं शांति के उपाय तथा वैज्ञानिक अध्यात्मवाद का जीवन दर्शन, आध्यात्मिक साम्यवाद की जीवनपद्धति और आध्यात्मिक मानवतावाद की जीवन-दृष्टि के रूप में प्रकटी प्रज्ञावतार की चेतना सुनिश्चित रूप से विश्वमानवता के उज्ज्वल भविष्य व सार्वभौमिक कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने में सफल रहेगी।

अध्ययन का अंतिम सोपान—'उपसंहार' है। इसके अंतर्गत संपूर्ण शोधकार्य का सारांश प्रस्तुत करते हुए निष्कर्ष रूप में शोधविषय के महत्त्व, उद्देश्य एवं प्रासंगिकता का विवेचन किया गया है। हमारी संस्कृति में अवतार परंपरा आदिकाल से मौजूद रही है।

मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, श्रीकृष्ण, बुद्ध, महावीर जैसे अवतारों की सुदीर्घ शृंखला है, जिनके आदर्शों से मानव समाज सदैव प्रेरित होता आया है। सभी अवतारों के संदर्भ में एक सामान्य लक्षण यह है कि उनके समय की समस्या का जैसा स्वरूप था, उसी के अनुरूप समाधान के उपाय प्रस्तुत किए गए हैं।

वर्तमान युग में समस्या का स्वरूप सूक्ष्म है। समस्या का मूल केंद्र विचार और भाव संस्थान की विकृति है, जिसका समाधान मानव मात्र के विचार परिवर्तन एवं भावशोधन के द्वारा ही संभव हो सकता है। इसी प्रयोजन को सिद्ध और साकार करने हेतु प्रज्ञावतार की आवश्यकता है, जिसे आचार्य श्रीराम शर्मा ने युगधर्म की संज्ञा प्रदान की है। उनका संपूर्ण जीवन दर्शन ही प्रज्ञावतार का पर्याय बनकर प्रकट हुआ है। ❑

ॐ तत्-सत् है परमात्मा रूप

(श्रीमद्भगवद्गीता के श्रद्धात्रयविभागयोग नामक सत्रहवें अध्याय की बाईसवीं किस्त)

[विगत किस्त में श्रीमद्भगवद्गीता के सत्रहवें अध्याय के बाईसवें श्लोक पर चर्चा की गई थी। इस श्लोक में श्रीभगवान कहते हैं कि जो दान बिना सत्कार के तथा अवज्ञापूर्वक अयोग्य देश और काल में कुपात्र को दिया जाता है, वह दान तामस कहलाता है। दान देते समय यदि भावना अपमान की है अर्थात ऐसा भाव है कि हम दान नहीं दे रहे हैं, वरन किसी अन्य व्यक्ति के ऊपर एहसान कर रहे हैं तो वो असत्कार की भावना, अवज्ञा की भावना तामसिक दान का पहला आधार बनती है। भगवान कृष्ण ऐसी भावना को 'असत्कृतम्' एवं 'अवज्ञातम्' कहकर पुकारते हैं। कई लोग दान देते तो हैं, परंतु उनके मन में कहीं यह भावना होती है कि जिसे दान दिया जा रहा है, वो हमसे तुच्छ एवं हीन है और वो उनको दान कुछ इस तरह देने का प्रयत्न करते हैं, मानो भिक्षा दी जा रही हो। इस भावना को भगवान कृष्ण तामसिक भावना कहते हैं। इसके साथ ही कुछ लोग दान देते समय काल, समय, परिस्थितियाँ इत्यादि नहीं देखते—इस भावना को भी भगवान कृष्ण तामसिक दान मानते हैं।

भगवान कृष्ण कहते हैं कि इस तरह का दान देने वाला व्यक्ति शास्त्रोक्त समीकरणों एवं सिद्धांतों को भी नहीं मानता और कुपात्र को देने में, कुसमय देने में एवं गलत उद्देश्य के लिए भी दान देने में संकोच नहीं करता। ऐसे दान को भगवान कृष्ण तामसिक दान की श्रेणी में रखते हैं। इस तरह कुपात्र को देने वाला, असत्कार, अवज्ञा से देने वाला दान तामसिक दान कहलाता है।]

इस प्रकार दानों के विभिन्न भेदों की व्याख्या करने के उपरांत श्रीभगवान कहते हैं कि

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा॥*23***॥**

शब्दविग्रह—ॐ, तत्, सत्, इति, निर्देशः, ब्रह्मणः, त्रिविधः, स्मृतः, ब्राह्मणाः, तेन, वेदाः, च, यज्ञाः, च, विहिताः, पुरा।

शब्दार्थ—ॐ (**ॐ**), तत् (**तत्**), सत् (**सत्**), ऐसे (यह) (**इति**), तीन प्रकार का (**त्रिविधः**), सच्चिदानंदघन ब्रह्म का (**ब्रह्मणः**), नाम (**निर्देशः**), कहा है (**स्मृतः**), उसी से (**तेन**), सृष्टि के आदिकाल में (**पुरा**), ब्राह्मण (**ब्राह्मणाः**), और (**च**), वेद (**वेदाः**), तथा (**च**), यज्ञादि (**यज्ञाः**), रचे गए (**विहिताः**)।

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम्॥*24***॥**

शब्दविग्रह—तस्मात्, ओम्, इति, उदाहृत्य, यज्ञदानतपःक्रियाः, प्रवर्तन्ते, विधानोक्ताः, सततम्, ब्रह्मवादिनाम्।

शब्दार्थ—इसलिए (**तस्मात्**), वेदमंत्रों का उच्चारण करने वाले श्रेष्ठ पुरुषों की (**ब्रह्मवादिनाम्**), शास्त्रविधि से नियत (**विधानोक्ताः**), यज्ञ, दान और तपरूप क्रियाएँ (**यज्ञदानतपःक्रियाः**), सदा (**सततम्**), ॐ (**ओम्**), इस (परमात्मा के नाम को)(**इति**), उच्चारण करके (ही)(**उदाहृत्य**), आरंभ होती हैं (**प्रवर्तन्ते**)।

अर्थात ॐ तत्-सत्—इन तीन प्रकार के नामों से जिस परमात्मा का संकेत किया गया है, उसी परमात्मा से सृष्टि के आदि में वेदों तथा ब्राह्मणों और यज्ञों की रचना हुई है और इसीलिए वैदिक सिद्धांतों को मानने वाले पुरुषों की शास्त्रविधि से नियत यज्ञ, दान और तपरूप क्रियाएँ सदा 'ॐ' इस परमात्मा के नाम का उच्चारण करके ही आरंभ होती हैं। बड़ा ही अद्भुत एवं अलौकिक सूत्र है यह। यहाँ भगवान कहते हैं वो शुद्ध, चैतन्य, निर्विकार, शाश्वत चैतन्य सत्ता जिन्हें हम परमात्मा के नाम से जानते हैं—वे परमात्मा तीन प्रकार के नामों से जाने जाते हैं, ॐ, तत् एवं सत्।

उन्हीं परमात्मा ने सृष्टि के प्रारंभ में वेदों, ब्राह्मणों एवं यज्ञों को बनाया। इसी भाव को समाहित करते हुए महानिर्वाण तंत्र में एक श्लोक आता है कि

ॐ तत्सदिति मंत्रेण यो यत्कर्म समाचरेत्।
गृहस्थो वाप्युदासीनस्तस्याभीष्टाय तद् भवेत्॥
जपो होमः प्रतिष्ठा च संस्काराद्यखिलाः क्रियाः।
ॐ तत्सन्मन्त्रनिष्पन्नः संपूर्णाः स्युर्न संशयः॥

—महानिर्वाण तंत्र-14/154-155

अर्थात जो भी व्यक्ति ॐ तत्-सत्—इस मंत्र से कर्म का आरंभ करता है, उसको इससे अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है। जप, होम, प्रतिष्ठा, संस्कार आदि संपूर्ण क्रियाएँ—ॐ तत्-सत्—इस मंत्र से सफल हो जाती हैं, इसमें संदेह नहीं है।

श्रीभगवान कहते हैं कि यही कारण है कि वेदों को और वैदिक सिद्धांतों को मानने वालों के लिए ॐ का उच्चारण करके कार्य को करना मुख्य हो जाता है। ऐसा करने के पीछे का निहित कारण शब्द नहीं, बल्कि भाव की प्रधानता है और वह भाव ही उस कार्य को सफल बनाता है। (क्रमशः)

कौरवों और पांडवों की सेनाएँ आमने-सामने आ गईं। शंख बजने लगे। कुरुक्षेत्र में युद्ध की पूरी तैयारी हो चुकी थी। ठीक तभी एक टिटिहरी का आर्त्तनाद गूँजा। दोनों शिविरों के मध्य एक खोह में उसका घोंसला था। उसे स्वजीवन की तो चिंता नहीं थी, परंतु अपने बच्चों की थी। उसकी निस्सहाय पुकार सारे वातावरण में बिखर गई थी।

श्रीकृष्ण के कानों तक यह पुकार पहुँची, वे दौड़ पड़े। एक पत्थर उठाकर घोंसले के द्वार पर रख दिया और वापस आकर सेनापति से कहा—"अब तुम युद्ध का बिगुल बजा सकते हो।" महापुरुष विषम परिस्थितियों में भी मानवता का साथ नहीं छोड़ते।

विज्ञान एवं अध्यात्म का समन्वय

विज्ञान के अनुसार अंतरिक्ष व उसकी अंतर्वस्तु को ब्रह्मांड कहते हैं। ब्रह्मांड में सभी ग्रह, तारे, आकाशगंगाएँ, अपरमाण्विक कण, सारा पदार्थ और सारी ऊर्जा सम्मिलित है।

इस प्रकार ब्रह्मांड के दो स्वरूप माने गए हैं। एक भौतिक तथा दूसरा आध्यात्मिक स्वरूप। भौतिक स्वरूप वह है, जो हमें प्रत्यक्ष रूप से अपनी आँखों से दिखाई देता है, कानों से सुनाई देता है, नाक से गंध का बोध कराता है, जिह्वा से स्वाद की पहचान कराता है।

भौतिक जगत् ब्रह्मांड में उपस्थिति वस्तुओं का प्रकटीकरण है। जड़ और चेतन पदार्थ जैसे भी दृष्टि के सम्मुख होते हैं, उन्हें उसी रूप में स्वीकार कर व्यक्ति अपने भौतिक शरीर की सुविधाओं हेतु उनका प्रयोग करता है।

आध्यात्मिक जगत् भौतिकता को स्वीकारता है, किंतु यह मानता है कि ब्रह्मांड में भौतिक तत्त्वों का सृजन किसी परम शक्ति के माध्यम से ही हुआ है तथा वही परम शक्ति समूचे ब्रह्मांड का संचालन कर रही है।

वह परमसत्ता जिसे परमात्मा कहते हैं, उसकी क्रियाशीलता ही प्रकृति है। धर्म चाहे कोई भी हो, मार्ग चाहे कोई भी अपनाया जाए, परंतु पूजा, शक्ति की ही होती है। शक्ति परम सत्ता का ही पर्याय है। विचारणीय है कि परम सत्ता की पहचान किस प्रकार संभव है ? इस संदर्भ में कहा जा सकता है कि आडंबरयुक्त पूजापद्धतियों से परम सत्ता का दर्शन नहीं किया जा सकता।

निर्गुण भक्तिशाखाएँ एवं सगुण भक्तिशाखाएँ विपरीत दिशाओं में परम सत्ता को अनुभव करने का प्रयास करती रही हैं, किंतु सच्चे अर्थों में परमसत्ता का अनुभव प्राप्त करना उनके लिए भी आसान एवं सरल नहीं रहा है। हम वैचारिक धरातल पर आस्तिक और नास्तिक जैसी आस्थाओं में सिमटकर तर्क-कुतर्क करने में विश्वास रखते हैं। जब कभी हम शांतिपूर्ण वातावरण में स्थिर होकर मनन करते हैं, तब हमें सत्य का एहसास अवश्य होता है।

सत्य धर्म की संकीर्ण परिभाषाओं में बँधकर छटपटाहट का अनुभव करता है। विशिष्ट पूजा पद्धतियाँ उसे कृत्रिमता का बोध कराती हैं। वह स्वतंत्र होना चाहता है। सभी बंधनों से मुक्त होना चाहता है। निश्चय ही प्राणी का जन्म किसी धर्म, जाति या संप्रदाय में नहीं होता। जातीय बंधन उसे समाज ने प्रदान किए हैं।

प्रकृति ने मानवस्वरूप प्रदान करके हमें सभी प्राणियों में श्रेष्ठता प्रदान की है। उसी श्रेष्ठता को हम संकीर्णता के दायरे में ढालकर स्वयं के लिए बेड़ियाँ बुन रहे हैं। संकीर्ण विचारधाराएँ समाज में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न कर रही हैं। समूचे विश्व में जातीय और धार्मिक उन्माद का कारण यही संकीर्णता है। यह विश्व-शांति भंग कर रही है।

ऐसे चिंतन से मानवमात्र के कल्याण की सर्वोपरि कामना व्यक्त होती है। समाज, विचारों को यथार्थ के धरातल पर उतारने से ही विकसित होता है।

समाज के कल्याण की पृष्ठभूमि '**सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः**' की भावना से ही

संभव है, जिसके लिए संकीर्ण बंधनकारी विचारों एवं क्रियाकलापों को त्यागना अनिवार्य है।

संकीर्णता चाहे विचारों की हो या भावनाओं की—हमारे विकास को अवरुद्ध करती है। विचार सृजनशील होना चाहिए एवं भावना पवित्र एवं पावन। यही मानवीय विकास का अधिकार है। ब्रह्मांड सतत विकसित हो रहा है। इस प्रकार हमको भी अपने अंदर की शक्तियों को सक्षम, समर्थ एवं विकसित करना चाहिए और यह तभी संभव है, जब शरीर एवं मन अर्थात भौतिकता एवं आध्यात्मिकता के मध्य हम समुचित समन्वय एवं सामंजस्य स्थापित करें। ❑

आजीवन सदस्य कृपया ध्यान दें

आपने जब आजीवन सदस्यता स्वीकार की थी, तब से अब तक महँगाई इतनी अधिक बढ़ चुकी है कि पत्रिका की आजीवन सदस्यता का निर्वहन कर पाना कठिन हो रहा है। अब पूर्व की सुरक्षानिधि में आजीवन सदस्यता बनाए रखना संभव नहीं जान पड़ता। जो सदस्य रुपये 150 (सन् 1982) में बने थे, उन्हें अभी तक पत्रिका भेजी जा रही है; जबकि वार्षिक चंदा रुपये 15 (सन् 1982) से बढ़कर रुपये 300 हो गया है—भविष्य में और बढ़ता रहेगा। ऐसी स्थिति में आजीवन सदस्यता को पुरानी शर्तों पर जारी नहीं रखा जा सकेगा।

अब नई व्यवस्था के अनुसार आजीवन सदस्यता 20 वर्ष तक सीमित रहेगी। उसका अब चंदा रुपये 6000/- होगा। हम सबकी यही अपेक्षा है कि जो श्रद्धा-स्नेह का संबंध लंबे समय से बना हुआ है, वह और भी प्रगाढ़ होगा। अखण्ड ज्योति का आलोक आपको एवं अन्य परिजनों को आलोकित करता रहेगा।

इसके लिए हम आपके समक्ष निम्न विकल्प प्रस्तुत कर रहे हैं—

(1) आपका आजीवन शुल्क जो भी जमा है, उसे काटकर शेष रुपया और भेज दें, ताकि आपकी आजीवन सदस्यता (20 वर्षीय) बनी रहे। राशि बैंक ड्राफ्ट/चैक/RTGS/NEFT से भेजी जा सकती है। राशि भेजने के लिए बैंकों का विवरण पत्रिका में पृष्ठ सं. 65 पर दिया गया है।

(2) आपकी आजीवन सदस्यता समाप्त कर दी जाए एवं जमा सुरक्षानिधि वार्षिक चंदा में ट्रांसफर कर दी जाए। उस राशि से वार्षिक चंदा रुपये 300/- के हिसाब से जब तक का चंदा बने अखण्ड ज्योति भेज दी जाए।

(3) यदि किन्हीं कारणोंवश ऐसा संभव न हो पा रहा हो तो अपने बैंक खाते की जानकारी भेजने का अनुग्रह करें, जिससे आपको राशि वापस भेजी जा सके। विवरण मिलने पर आपके खाते में सीधे रुपया भेज दिया जाएगा।

पत्र व्यवहार में अपनी सदस्य संख्या, नाम, पता, फोन नंबर, ईमेल का उल्लेख अवश्य करें।

आप सबको पत्र द्वारा सूचित किया जा चुका है, संभव है किसी कारणवश पत्र न मिला हो। अपनी सहमति का पत्र डाक/ईमेल द्वारा भेजने का अनुग्रह करें।

—अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा-281003

Email-akhandjyoti@akhandyotisansthan.org

परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी

अनुदान और वरदान (उत्तरार्द्ध)

विगत अंक में आपने पढ़ा कि परमवंदनीया माताजी अपने इस हृदयस्पर्शी उद्‌बोधन में समस्त गायत्री परिजनों को साधना के पथ से गुजरने के बाद प्राप्त होने वाले अनुदानों और वरदानों के विषय में बताती हैं। परमवंदनीया माताजी कहती हैं कि जीवन में कितनी भी प्रतिकूल परिस्थितियाँ आएँ, पर पूज्य गुरुदेव और वंदनीया माताजी कभी भी उनके अंग-अवयवों का हाथ छोड़ने वाले नहीं हैं। परमवंदनीया माताजी स्मरण दिलाती हैं कि गुरुसत्ता से जुड़ जाने के उपरांत जो भी साधक उनका अभिन्न अंग होने का सौभाग्य प्राप्त करने से चूक जाता है, वह दुर्भाग्यशाली ही कहा जाता है। इसलिए आवश्यकता है कि साधना के पथ पर मिलने वाले अनुदानों और वरदानों को प्राप्त करने के लिए हर कोई उत्तम उत्तराधिकारी बने और संस्कृति की पुकार को सुने। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को ....

सौंप दिया भगवान तुम्हारे हाथों में

बेटे! हमने आपसे वायदा किया है कि आपके जीवन के रथी हम बन जाएँगे, हम दोनों बन जाएँगे। अपने जीवन के रथ को सौंप करके तो देखिए। आपने तो कुछ सौंपा नहीं। बेटे! क्या सौंप दिया है? सौंप दिया भगवान तुम्हारे हाथों में। क्या सौंप दिया है? अरे! माताजी छह लड़कियाँ हैं। एक की शादी हो गई, पाँच और रह गई हैं। यही सौंप दी हैं।

अच्छा बेटा! तूने अपनी संकीर्णता सौंपी है कि नहीं? नहीं, यह नहीं सौंपी है। यह सौंप दिया है, जो मुझसे नहीं हो रहा है, वो काम आप करा दीजिए। बेटा! तूने कुछ नहीं सौंपा है। तेरा मन अभी कलुषित है, कषाय-कल्मष से भरा हुआ है। मन को तूने पवित्र नहीं किया है और मन को ऐसा नहीं किया है। जिसे कबीर ने कहा है कि—

"कबिरा मन निर्मल भया, जैसे गंगा नीर।
पीछे-पीछे हरि फिरे, कहत कबीर-कबीर॥"

अरे! पीछे भगवान फिरता है, किनके? भक्तों के पीछे पड़ा है, कब? जब उसने गंगाजल जैसा पवित्र और निर्मल अपने को बना लिया है, फिर तो भगवान को आना ही पड़ेगा। भगवान की क्या मजाल जो नहीं आएगा, भगवान को आना पड़ेगा?

मीरा के दरवाजे पर स्वयं भगवान कृष्ण आए थे। आपके पास आएँगे? बेटे! शक है कि आएँगे कि नहीं आएँगे, पर मीरा के संग नाचना चाहते थे। मीरा की सखियों ने कहा कि यह बता कि तैने कृष्ण को कैसे खरीदा है? क्या कहीं से मोल खरीदा है?

उन्होंने कहा—"मैंने मोल खरीदा है।" "किससे खरीदा है?" उन्होंने कहा—"मैंने लिया प्रेम तराजू तोल।" अरे, मैंने तो प्रेम की तराजू में

►'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◄

कृष्ण को तोल लिया और यह तेरा कौन है? यह मेरा सब कुछ है। कौन? कृष्ण मेरा सब कुछ है। उस कृष्ण के लिए मारी-मारी फिरी थी। कहाँ आपका राजस्थान, कहाँ मथुरा, कहाँ द्वारका। कहाँ-कहाँ तक उसने कृष्ण का गुणगान किया था?

हमारा स्वर्ग हमारे चिंतन में

जिस समय की जो परिस्थितियाँ होती हैं, उसके मुताबिक यदि कदम उठाया गया है, आराधना के लिए जो कदम उठाया गया है, वह सार्थक है, यदि वह भटक गया है, तो सार्थक नहीं है। केवल माला लेकर के मीरा एक कोने में बैठ जाती या कबीर एक कोने में बैठ जाते। रैदास एक कोने में बैठ जाते, तो आज भक्तों की गिनती में नहीं आते। भक्तों की गिनती में, भक्तों की श्रेणी में तब आए, जब उन्होंने जितना नाम जपा, उससे सौ गुना उन्होंने काम किया।

उन्होंने कितना श्रम किया है, चाहे जिस ग्रंथ को खोलकर के आप पढ़िए, उसमें से एक ही गंध निकलेगी, उसमें से एक ही सार निकलेगा कि आप सही रास्ते पर चलिए। नेक बनिए, अच्छे इनसान बनिए, मेहनतशील बनिए, परोपकारी बनिए, सहृदय बनिए। आप दीन-दु:खियों के काम आइए तो आपकी साधना सार्थक है। नहीं, तो आप केवल बैठे रहिए और मक्खी झाड़ते रहिए। कहते हैं न कि घोड़े की पूँछ बड़ी होगी, तो क्या करेगा? अपनी मक्खी मारेगा और क्या करेगा।

माला लेकर के बैठ जाइए स्वर्ग-मुक्ति मिल जाएगी। हाँ, चले जाइए। तो स्वर्ग का आप क्या करेंगे? बताइए, उस स्वर्ग में आपको क्या मिलेगा? हिंदुओं के मुताबिक तो वहाँ खीर की नदियाँ होती हैं और बुरा शब्द तो मैं क्या कहूँ आपसे? रहने दीजिए। मैं माँ हूँ, आप बच्चे हैं। मुसलमानों के जन्नत में हूर और गुलाम मिलेंगे। वहाँ शराब की नदियाँ बहती हैं। ऐसे स्वर्ग को धिक्कार है। स्वर्ग का क्या करेंगे? बेटे! हमारा स्वर्ग इसी पृथ्वी पर है और यहीं है—हमारे दृष्टिकोण में, हमारे चिंतन में। हम जहाँ कहीं भी जाएँगे, वहीं स्वर्ग स्थापित कर लेंगे।

बेटे! जब हम अखण्ड ज्योति कार्यालय से यहाँ आए, तो गुरुजी अज्ञातवास में चले गए, तो मैं अकेली रह गई थी। हमारे यहाँ एक लड़का रहता था। उसने हँसते हुए कहा—यहाँ आपके कैसे दिन कटते हैं? बेटे! वह तो सब महिलाओं को मालूम हो सकता है। पति के बगैर—उसके पास पति न हो, तो उसका दिल कितना दहलता होगा, कैसे अपना वक्त काटती होगी, आप तो नहीं जान सकते?

बेटे! पर शायद कोई महिला होगी, वह समझती होगी कि माताजी ने गुरुजी के बगैर कैसे अपना वक्त काटा होगा? जबकि हम दोनों एक दूसरे की छाया के तरीके से रहते हैं। हमने इतने दिन कैसे काटे होंगे, किन परिस्थितियों में काटे होंगे? लेकिन हम उनके लिए कुरबान हैं, हम उनके लिए समर्पित हैं, तो वे जो कदम उठाएँगे, वह हम भी उठाएँगे। कोई दिक्कत आएगी, तो देखा जाएगा,

---

राहगीर ने पत्थर मारा तो आम के वृक्ष से कई पके हुए आम नीचे आ गिरे। राहगीर उन्हें उठाकर अपनी राह चल दिया।

यह दृश्य देख रहे आसमान ने वृक्ष से कहा—"वृक्ष! मनुष्य आएदिन तुम पर पत्थर से प्रहार करते हैं, पर तुम तब भी इन्हें फलों का उपहार देते हो, ऐसा क्यों?" वृक्ष हँसा और बोला—"बंधु! मनुष्य भले ही अपना धर्म छोड़ दे, पर मैं अपना धर्म कैसे छोड़ सकता हूँ।"

जो भी कुछ होगा, सो होगा, शरीर का भी होगा, मन का भी जो होगा, सो होगा, कदम उठाया, तो उठाते ही रहेंगे।

आपको हमने बुलाया है

बेटे! हाँ, तो मैं यह कह रही थी कि जब हम यहाँ आए, तो उस लड़के को बुलाया। उसने कहा कि हमको ऐसा लगता है कि जहाँ कहीं भी गुरुजी-माताजी जाएँगे, वहीं दूसरी गायत्री तपोभूमि भी बन जाएगी और जैसा रहते थे, वैसा ही उनका रहना भी होगा, वैसे ही भीड़-भाड़ रहेगी।

तो बेटा! वही फिर हमारे पीछे लगी चली आई है और यहाँ से चले जाएँ तो? तो फिर यह पीछे चली जाएगी। जहाँ कहीं हम जाएँगे, वहीं चली जाएगी। क्यों चली जाएगी? क्योंकि हमारा मन और हमारा अंत:करण सारे में व्याप्त रहता है।

जैसे चुंबक होता है, लोहे को अपनी तरफ खींचता रहता है, वृक्ष बादलों को खींचते रहते हैं। आप यह समझते हैं कि आप अपने आप आए हैं? नहीं, आप अपने आप नहीं आए, बल्कि हमने बुलाया है और इसलिए बुलाया है कि आप में वह प्रतिभा है, वह गुण है, जैसा कि हम चाहते हैं।

आपने अपने लिए श्रम नहीं किया है; लेकिन हमने आपके लिए बहुत श्रम किया है। जैसे कि गोताखोर मणि-माणिक्य को निकाल करके समुद्र में से लाता है, उसी तरीके से मेहनत करके और डुबकी लगाकर के गहराई से हम आपको निकाल कर लाए हैं और आपको एक माला के रूप में पिरो करके रखा है।

आप खंडित हो जाएँ, आप टूट जाएँ, तो हम क्या कर सकते हैं? हम कुछ नहीं कर सकते; लेकिन हमने आपको बाँधकर रखा है। अपने हृदय से बाँधकर रखा है। अपने विचारों से, अपने सिद्धांतों से आपको बाँधकर रखा है। बेटे! हमने कुछ भी नहीं छोड़ा, जो आपकी झोली में न डाला हो।

हमने अपना तप भी डाला, अपना पुण्य भी डाला है और रही आपके दु:खों की, कष्टों की, कठिनाइयों की बात जिसको लेकर आप आए थे, उसका क्या होगा? माताजी, हम तो अपनी अनेक कठिनाइयाँ लेकर के आए थे, मुसीबतें कहने आए थे, आपने भी नहीं सुनीं। गुरुजी तो सुनते ही नहीं हैं। बेटा! ऐसा लांछन हमारे ऊपर आप नहीं लगा सकते। यह मत लगाना। यह भूलकर भी आप मत कहना।

आपके हर लड़के के हृदय की बात हमको मालूम है, हमने पढ़ लिया है, आपने लिखकर भी दिया है, हमने माँगा है, तो आप हमको लिखकर के दे भी जाना। आपका मन खाली कराने के लिए हमने माँगा है; ताकि आपको यह लगे कि हमने सब लिखकर के दे दिया, बाकी का हमको सब मालूम है, एक-एक की मालूम है और न मानो, तो तुम पूछ लेना। आपका भाग्य, आपका प्रारब्ध, हमारा पुण्य, जितना उसमें योग बन सकेगा, वह आपका जरूर हल हो जाएगा।

बेटे! यदि उसमें आपका भाग्य नहीं है, मनोकामना तो किसी की कहाँ तक पूरी होती है? मनोकामना तो किसी की भी पूरी नहीं होती। रावण की भी पूरी नहीं हुई। मनोकामना पूरी हुई? बिलकुल पूरी नहीं हुई है और दशरथ की? दशरथ की भी पूरी नहीं हुई। दशरथ को शाप लगा हुआ था और भगवान राम चाहते, तो बचा सकते थे; लेकिन नहीं। प्रारब्ध तो भोगना ही चाहिए, उसी में व्यक्ति की शान है और बेटे! पुत्र-वियोग में तड़प-तड़प कर दशरथ ने प्राण त्याग दिए।

सुभद्रा की मनोकामना कहाँ पूरी हुई? अभिमन्यु इकलौता लड़का था और जब वह मारा

गया, तो कृष्ण से यह कहा—"भैया, तू तो मेरा भाई है और तुझे जरा भी दया नहीं आई, तू तो भगवान कहलाता है। अरे! तू चाहता तो अपने एकलौते भानजे को बचा नहीं सकता था?"

कृष्ण ने कहा—"हे बहन! भाई मैं तेरा जरूर हूँ। इसमें कोई शक नहीं है; लेकिन प्रारब्ध जन्म के जो भोग हैं, वह तो भोगने ही पड़ेंगे। तुझे भोगना पड़ रहा है और मुझे भी भोगना पड़ेगा। मैं भी भोगने के लिए तैयार हूँ; क्योंकि मैंने बालि को मारा था। वही जंग लगा हुआ बाण मेरे लिए भी रखा है और वही बाण मेरे पैर में लगेगा, मुझे सेप्टिक होगी और मैं मारा जाऊँगा और मेरे सारे-के-सारे कुटुंब का नाश हो जाएगा। सबको भुगतना पड़ेगा।"

तो हम आप से यह वायदा करें कि आपकी सब मनोकामना पूरी हो जाएगी, तो इससे बड़ा धूर्त कोई नहीं हो सकता और आपसे ज्यादा मूर्ख कोई नहीं हो सकता। इससे बड़ा धूर्त तो कोई नहीं हो सकता है कि आप से यह कहे कि आपके सभी कर्मबंधनों को समाप्त कर देंगे। हो सकता होगा, तो हो भी सकता है और नहीं हो सकता है, तो इसमें क्या बात है? आप उसके लिए मुकाबले को तैयार हो जाइए। यह आपकी कसौटी है।

बेटे! हर भक्त की कसौटी होती आई है, आपकी नहीं होगी। आपकी होनी चाहिए, तो आप इसके लिए भी तैयार हो जाइए।

हमारा आवाहन सुनें

जो आह्वान हमने आपसे किया है, आपसे निवेदन किया है कि आप अपने घर से निकलिए। आपने काम से छुट्टी पाई है। पूरी छुट्टी मत पाइए, पर कम-से-कम इतना तो करिए। हम आपके गुरु हैं, आपकी माँ हैं, तो आपसे और तो कुछ नहीं माँग रहे हैं; लेकिन आपका समय माँग रहे हैं। आप चार घंटा समय तो दे सकते हैं।

चौबीस घंटे आपके लिए, आपकी बीबी के लिए, आपके बच्चों के लिए, सब समय उसी के लिए है और हमारे लिए कुछ नहीं। नहीं, हमारे लिए भी है। हम दबाव से आपसे कहेंगे, सख्ती से आपसे कहेंगे, मिन्नतें भी आपकी करेंगे, आपकी ठोड़ी में भी हाथ डालेंगे और जब आप रास्ते पर नहीं आएँगे तब तो बेटे! फिर हम सख्ती से कहेंगे। फिर हम शक्ति से कहेंगे।

शक्ति से कैसे कहेंगे साहब! फिर तो उसको डंडे लगेंगे। डंडे ही नहीं लगेंगे, पर बेटा! तू अपने घर चले जाना और रात में सोना, फिर देख तेरी पत्नी-बच्चों को तो नहीं सताएँगे, पर हम दोनों रात में तेरे पास जाएँगे और खींचकर एक झापड़ इधर से-एक उधर से लगेगा। सो तू तिड़ी-भिड़ी होकर खड़ा हो जाएगा।

एक तरफ माताजी दिखाई पड़ेंगी, तो एक तरफ गुरुजी दिखेंगे। एक तरफ गुरुजी लगा रहे होंगे, तो माताजी जरा धीरे-धीरे लगाएँगी और जरूरत पड़ी, तो माताजी भी लगा देंगी, फिर माताजी का हाथ भले से आपको ऐसा लगे कि प्यार से

प्रतिशोध अपनी ही ज्वाला में जलते हुए धैर्य से बोला—"तुम मेरे साथ नहीं रहा करो। तुम्हारे जैसे शांत व्यक्ति के साथ रहने से मेरी शान घटती है। मैं तो जैसे-को-तैसा करने पर विश्वास रखता हूँ।"

धैर्य ने शांति से प्रतिशोध का साथ छोड़ दिया। एकाकी प्रतिशोध तब से अधीरता के साथ सारे संसार में विचरण कर रहा है और अपना एवं समाज का अहित कर रहा है।

सहला रहीं हैं। हमारा एक रिश्तेदार था। एक बार मैंने जरा जोर से दो-तीन थप्पड़ मार दिए। मैंने कहा कि यह सवेरे चला गया है, इसे पढ़ा रहे, लिखा रहे हैं। मैं कहाँ जंगल में तुझे ढूँढ़ती फिरूँ?

मैंने जब 24-24 लक्ष के अनुष्ठान किए थे, तब लड़कियाँ रखी थीं। वे मेरे पास रही हैं,उन्हें पढ़ाया-लिखाया, ब्याह-शादी की। वह बेचारी छोटी-छोटी थीं, नन्हीं-सी। उन्होंने उस लड़के से अमरूद मँगाए, सो वह लेने चला गया और देर हो गई। यहाँ आया, तो मैंने मार दिया। पीछे लड़कियों से बोला—जीजी! मेरे नहीं लगा। इनके हाथ तो ऐसे गुदगुदे हैं—जैसे रूई, मेरे एक भी नहीं लगा।

तो बेटे! चाहे आपके लगे या न लगे, माँ जरा प्यार-से मारती है, बाप जरा कड़ाई-से पेश आता है। तो हम दोनों पेश आएँगे, फिर समझ लेना, आप जिधर को मुँह करेंगे, उधर ही गुरुजी-माताजी दिखाई पड़ेंगे।

शांतिकुंज शरीर है हमारा

अभी हम जिंदा हैं, तो दिखाई पड़ेंगे और फिर मर जाने दे। शरीर मरेगा, हम तो मरेंगे नहीं। जीवात्मा तो नहीं मरती। कब तक नहीं मरेंगे? लाखों वर्षों तक-करोड़ों वर्षों तक हम नहीं मरेंगे। हम आपसे वायदा किए जा रहे हैं कि बिलकुल नहीं मरेंगे, आप देख लेना कि कैसे दिखाई पड़ेंगे? जब आपका शरीर नहीं रहेगा, तो आप कहाँ दिखाई पड़ेंगे? अरे बेटे! यह मत कहना।

अरविंद के आश्रम में अभी भी जाते हैं और वही शक्ति पाते हैं, जो जब वे थे तब जितनी शक्ति मिलती थी। उनके हाल में मौन बैठ जाते हैं, तो उतनी ही शक्ति मिलती है। जब हम दोनों नहीं रहेंगे और आप आएँगे, तो आपको वही शक्ति, वही प्रेरणा, वही प्यार और दुलार आपको मिलता रहेगा।

वही प्रेरणा मिलती रहेगी, जो इस समय आपको मिल रही है। अखंड दीपक के आप दर्शन करना, जो कि हमारी मूल थाती है, हमारी मूल संपत्ति है। हम कुछ लेकर नहीं आए हैं; लेकिन उसको हम अपने साथ लेकर के आए, वह हमारे प्राणों से भी ज्यादा प्रिय है।

हम उसमें समाये रहेंगे, आप उसमें देखिए तो सही, आप दर्शन तो कीजिए, उससे प्रेरणा तो पाइए। आपने तो कुछ नहीं पाया और हमने सब कुछ उसी से पा लिया। आपने कुछ भी नहीं पाया, आपने तो शरीर से भी नहीं पाया, न आप भावनाओं से, न आप सिद्धांतों से कुछ पा सके, किसी से भी नहीं पाया। हम तो पहले से ही अपना स्मारक बनाए जा रहे हैं।

गुरुजी ने कहा—अरे! ऐसे आप क्या कह आईं? ऐसे ही मेरे दिमाग में आ गया। मैंने कहा— हम मरें, तो हमें यहीं समाधि देना। हम तो यहीं रहेंगे, शांतिकुंज से हम नहीं जाएँगे, हमारा शरीर भले ही यहाँ से जाए।

बेटे! आप यहाँ आकर प्रेरणा पाना, आप हिम्मत पाना और आपके जीवन की जो समस्या है, वह सुलझती चली जाएगी। जिस दिन भी आप पुकारेंगे, उस दिन हम दौड़ आएँगे और आपके समक्ष होंगे, आपके समीप होंगे। आपको समीपता का अनुभव न हो, तो हम क्या कर सकते हैं। बेटे! हम कुछ नहीं कर सकते हैं। आपके सामने भगवान भी आ जाएँ, तब भी आपको दिखाई न पड़े, तो कोई क्या कर सकता है? आप कुछ अनुभव नहीं करेंगे।

आग के पास बैठे व्यक्ति को यदि आग का अनुभव नहीं होता है, तो यही कहना पड़ेगा कि इसकी स्पर्शशक्ति कहीं चली गई, इसलिए इसको अनुभव नहीं होता। नहीं, तो आग का अनुभव होना

चाहिए। समीपता का अनुभव नहीं होना चाहिए? प्राणशक्ति का, ऊर्जा का अनुभव नहीं होना चाहिए? यह अनुभव होना चाहिए, जो गुरुजी को हुआ है। जिनके गुरु कहाँ हैं? उनकी प्रेरणा ही तो आती है, उनकी छाया ही तो आती है। उन्होंने सारी जिंदगी अपने को तपा डाला, गला डाला और उन्होंने यह सारे विश्व के लिए किया है, तो आपको नहीं मिलेगा।

आपके गुरु तो बोलते भी हैं, आप तो प्रवचन भी सुनते हैं। वीडियो भी सुनते हैं और अब तो प्रणाम भी करने को मिला है। आपको तो अभी भी मिला है। आपको न मिले, बेटे! तो यह कहेंगे कि आप दुर्भाग्यशाली हैं या हम दुर्भाग्यशाली हैं कि हमारे अंदर वह शक्ति नहीं है कि हम आपको बना सकें या आपकी वह संकीर्णता पीछा नहीं छोड़ती। आपकी दुर्बलताएँ पीछा नहीं छोड़ रही हैं कि आप बनने के लिए तैयार हो जाएँ।

अंदर का विश्वास जगाएँ

बेटे! आप बनने के लिए जिस दिन तैयार हो जाएँगे, उस दिन आप समझ लेना कि आपके भाग्य का सूर्य उदय हो गया और बेटे! आपको बनाने वाला यह ऐसा कलाकार है कि आपको बना देगा। ऐसा कलाकार है, जो ऐसी बढ़िया कमाल की मूर्ति गढ़ता है कि आनंद आ जाता है। जो इसकी नाव में नहीं बैठा है, बात अलग है।

यह ऐसा खेने वाला मल्लाह है कि न तो यह खुद डूबता है और न डूबने देता है। यदि खुद डूबेगा, तो भले डूब जाए, कोई बात नहीं। फिर भी हम वायदा करते हैं कि हम किसी को डूबने नहीं देंगे। कैसे-कैसे बढ़िया कलाकार पैदा करता है? कभी किसी को संगीतकार, किसी को वक्ता, किसी को अनुभव ही नहीं है। लेखक न जाने कितने तैयार कर देता है, आपको तो विश्वास नहीं।

आप विश्वास रखिए, जिस दिन आपके अंदर विश्वास जागेगा, बस, उसी दिन देखिए, आप में से कौन-कौन क्या-क्या बनता है? बिलकुल आप बन जाएँगे, जो कि हमारे जीवन का अनुभव है। हम स्वयं बने हैं, आपके सामने हैं। आप किन आँखों से देखते हैं और कहते हैं—माताजी, जानें कौन हैं? बेटी बनाए हुए हैं और हम बने हैं। गीली मिट्टी जो होती है, उस मिट्टी को जैसा चाहे, वैसा बना सकते हैं।

आप बनाइए और हम बनकर दिखाएँगे। जिन्होंने कभी हमारी वाणी को नहीं सुना था, जिसमें हमारे पुराने परिजन भी हैं, वह जानते हैं कि माताजी ने सिवा राजी-खुशी पूछने के कभी कोई बात की है; लेकिन एक मनहूस दिन ऐसा आया कि हमने उस दिन शपथ ली कि हमारी वाणी को कोई नहीं रोक सकता।

हमारे शरीर को भी नहीं रोक सकता। वाणी भी नहीं रुकेगी। जो काम गुरुजी करते हैं, वह अब हम करेंगे, हम बोलेंगे। भाषा? हाँ, भाषा क्या होती है?

शिक्षित होगा, तो परमार्जित भाषा में बोलेगा और ज्यादा शिक्षित नहीं है, तो श्लोक लगाकर नहीं बोलेगा। कोई जरूरी है कि श्लोक लगाकर के हम अपनी बात को आपको समझाएँगे। आप से हम सीधे न कहेंगे? हम सीधे कहेंगे और आपको सुननी पड़ेगी, हम सुनाएँगे और आपको सुननी पड़ेगी।

हम आपको जबरदस्ती सुनाएँगे कि आप कुछ लेकर के जाइए। एक ही वरदान लेकर के जाइए कि हमारे अंदर में जो अग्नि जल रही है, उसका एक अंश आप लेकर के जाएँगे, तो हम समझेंगे कि हम भी धन्य हो गए और आप भी धन्य हो गए होंगे।

भावना से शांतिकुंज में रहना

आज आपकी विदाई है और आज आप जाने वाले हैं। माँ से बिछड़ करके बच्चा कहाँ जाएगा? कहीं नहीं जाएगा। आप शरीरों से तो जाना, पर मन से मत जाना। मन से तो यहीं आपकी माँ का आँगन है, इसी माँ के आँगन में आप खेलना, इसी में घूमना-फिरना, इसी में रहना।

कल्पना से, भावनाओं से आप यहीं शांतिकुंज में ही रहना। शरीर से वहाँ रहना; ताकि आपको कर्त्तव्य का बोध हो कि हमारा क्या कर्त्तव्य है, हमारा क्या फर्ज है? जिस आँगन में हम खेल रहे हैं, जिस माता-पिता से हम जुड़े हैं, जिस सत्ता से, जिस शक्ति से हम जुड़े हैं, उसके प्रति हमारा क्या कोई फर्ज और कर्त्तव्य भी होता है?

माँ ने पुकारा भी है कि बेटे! तू कहाँ जंजाल में फँस रहा है, हमारे काम नहीं आएगा क्या? हमारे से मतलब यह मत समझना कि माताजी यह कह रही हैं कि बेटे! तू हमारे काम आ और हम थक गए, देख अब हमसे कुछ काम नहीं होता, तो तू खाने को दे जा, पहनने को दे जा।

बेटा! जिस दिन हम यह कहें, उस दिन हमको एक बार नहीं, लाखों बार आप धिक्कारना कि ऐसे भी एक हुए थे, जो गुरु कहलाते थे, माँ कहलाती थीं और यह कहती थीं कि हमारे भरण-पोषण के लिए दे जा। नहीं बेटे! हमारी भुजाएँ इतनी लंबी हैं कि हम हर कार्य कर लेते हैं और अभी हमारा कमाने वाला बैठा है, सो हजारों को खिला देगा, आप हमें क्या खिलाएँगे?

समय की पुकार मान लें

हमको अपने लिए नहीं चाहिए; लेकिन मिशन के लिए माँगने में हमें कोई शरम नहीं आती, कोई हमें ऐतराज नहीं होता। उसके लिए तो हम बच्चों से कहेंगे कि बेटे! यह भी तुम्हारा एक बेटा है। बेटे के लिए जब आप नीति से कमाते हैं, अनीति से कमाते हैं, जो आपके मौत या बुढ़ापे में काम नहीं आता है, तो उसके लिए सर्वस्व झोंकने के लिए तैयार हो जाते हैं, तो यह भी आपका बेटा है।

चलो! बाप मत समझो, बेटा ही समझ लो; क्योंकि आज के जमाने में जो कुछ है, बेटे को ही भगवान समझते हैं। तो तू चल बेटा ही समझ ले। इसके लिए तो समय निकाल और श्रम निकाल और इसके लिए आ भी गया। यह समय की पुकार है।

स्वतंत्रता संग्राम में जिन्होंने राष्ट्र के लिए काम किया था, वह आज बेटे! हवाई जहाजों में घूमते हैं। स्वतंत्रता सेनानी फर्स्ट क्लास में घूमते हैं। सारे हिंदुस्तान में चक्कर काटते हैं, कब? अब काटते हैं। जिन्होंने उस समय काम किया है और समय निकल जाने पर फिर अब कोई यह कहे कि हमको ऐसा अवसर मिलेगा क्या? कुछ नहीं मिलेगा। कुछ हाथ लगने वाला नहीं है, क्योंकि समय निकल गया। उस समय यदि आपकी भावना होती और राष्ट्र के हित में आप कार्य करते, तो सही था; पर अब तो लालच आ गया।

बेटे! कि हमने राष्ट्र के लिए काम किया, तो मुआवजा मिलना चाहिए। यूपी गवर्नमेंट ने, केंद्रीय गवर्नमेंट ने गुरुजी से यह कहा था कि आपने स्वतंत्रता संग्राम में कितना काम किया है? आपने तो अपने इलाके में किसानों की सारी-की-सारी जो लगान थी, माफ करा दी थी, आपने इतना काम किया है।

आपका नाम तो श्रीराम है और आपको श्रीराम मत्त भी कहते हैं, क्योंकि आपने झंडा गिरने नहीं दिया था और तीन दिन तक झंडा मुँह में दबाए

रखा था। उससे आपका नाम 'मत्त' जी पड़ गया। इतना उन्होंने काम किया। उन्होंने कहा—आप नहीं लेंगे।

उन्होंने कहा—देखिए हमने राष्ट्र के लिए काम किया है। हमको आप देना चाहते हैं, तो उन गरीबों को दे दीजिए, हरिजनों को दे दीजिए और बच्चों की शिक्षा में लगा दीजिए, हम हाथ नहीं लगाएँगे। क्यों नहीं लगाएँगे? क्योंकि हमारे हाथ जो हैं। हमको पेंशन नहीं मिलती, तब भी तो हम खाते कि नहीं खाते, तो आपका दिया हुआ खाएँगे? हमने कभी किसी का नहीं खाया है, तो आपका क्यों खाएँ, हम नहीं खाएँगे।

बेटे! आज आखिरी दिन आप जा रहे हैं, इसलिए आप से दिल खोलकर के कुछ कहना चाहती हूँ; ताकि आप भी इस आग में शामिल हो जाएँ। हमारी आग में आप भी हिस्सेदार बन जाएँ। बाप का कर्ज होता है और जब बाप नहीं रहता, तो बेटा चुकाता है।

बेटे! और तो आपका कोई कर्ज नहीं है, लेकिन एक कर्ज जरूर है। हमारे दिल के दरद का कर्ज, हो सके तो इसको चुकाना, न हो सके, आप असमर्थ हैं, तो कहाँ से चुकाएँगे? लेकिन हमारा कोई भी बच्चा असमर्थ नहीं है। सब समर्थ हैं।

जिस चीज का हमने आह्वान किया है, उसके लिए हर लड़का, हर लड़की समर्थ है, दिल से सब समर्थ हैं। हम पैसे का हवाला नहीं दे रहे हैं। हम तो आपके तन और मन की बात कर रहे हैं। लड़कियाँ गाती थीं कि 'तन तुम्हारा हो गया और मन तुम्हारा हो गया।'

बेटे! जिस दिन तन और मन भगवान को समर्पित कर देते हैं, तो भगवान के अनेक अनुदान और वरदान हमको मिल जाते हैं और जब तक हम समर्पित नहीं करते, तब तक वह भी हमको बहकाता रहता है। हम बहकते रहते हैं, तो वह बहकाता रहता है।

हम अक्षत, पुष्प चढ़ाते रहते हैं, तो वह भी इतना तो संकीर्ण नहीं है, वह भी मुलायम, अच्छा है, इसको टॉफी दे दो, गुब्बारा दे दो। इसको इसी की जरूरत है। अब आपको गुब्बारे से और टॉफी से बहलने वाला नहीं होना चाहिए। आपको उसमें आनंद नहीं आना चाहिए। टॉफी और गुब्बारा लेकर के आप प्रसन्न होना चाहते हैं?

नहीं, बेटे! हमारा कोई विश्वास नहीं है। हमारा विश्वास है कि अब आप समर्थ हैं। दाढ़ी-मूछ वाले हो गए हैं, तो अब आप तिजोरी की चाभी लीजिए; ताकि हम हलके हो जाएँ और हम कहें कि हमने अपना वजन अपने बच्चों पर डाल दिया।

हम अपनी जिम्मेदारियों से हलका होना चाहते हैं। आप उन जिम्मेदारियों को सँभालिए, जो राष्ट्र के हित में, विश्व के हित में हैं। वह कदम आपको उठाना है। आज मैं अपनी यही बात कहने के लिए आई थी। बेटे! भावभीनी विदाई और हम दोनों का आशीर्वाद भी आपके साथ है। इन्हीं शब्दों के साथ अपनी बात समाप्त करती हूँ।

न त्वहं कामये राज्यं न सौख्यं न पुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्त्तिनाशनम्॥

॥ ॐ शांतिः ॥

सविता सर्वभूतानां सर्वभावांश्च सूयते।
सर्वनात्प्रेरणाच्चैव सविता तेन चोच्यते॥

—गायत्री महाविज्ञान

अर्थात समस्त तत्त्वों, सभी प्राणियों और समस्त भावनाओं को प्रेरणा देने के कारण ही सूर्य को सविता कहते हैं। भगवान सूर्य ही इस सृष्टि के पालक, पोषक और नियंत्रणकर्त्ता हैं।

विश्वविद्यालय परिसर से—222

ज्ञान-विज्ञान का केंद्र बना विश्वविद्यालय

युवाओं को गढ़ने की टकसाल देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने नए युग के स्वागत का बीड़ा उठाया है। पूज्य गुरुदेव की इस दिव्य संकल्पना ने अपने मत्स्यावतार के क्रम में अनेक विभूतियों का योगदान स्वीकार किया, जो स्वयं पूज्यवर की प्रेरणा से प्रेरित हो आगे आए।

मानव समाज के लिए यह निश्चित ही बड़े आश्चर्य का विषय रहा है कि भला किसी प्रकार किसी भवन के निर्माण की नींव दशकों पूर्व रखी जा सकती है—ऐसा दु:साध्य कार्य मात्र युगद्रष्टा स्तर की सत्ता से ही संभव बन पड़ता है। देव संस्कृति विश्वविद्यालय आज के समय में इसका जीवंत उदाहरण है, जिस गुरुकुल की नींव महाकालस्वरूप पूज्य गुरुदेव ने दशकों पूर्व रखी और इसके निर्माण का दायित्व अपने शिष्यों के सुपुर्द कर इस अभिनव रचना का संरक्षण स्वयं सदैव से करते चले आए हैं।

पूज्य गुरुदेव द्वारा तराशे गए नररत्नों में सम्मिलित सिक्किम राज्य के माननीय राज्यपाल महोदय श्री लक्ष्मण आचार्य जी का हाल ही में देव संस्कृति विश्वविद्यालय शुभ आगमन हुआ। अपने 2 दिवसीय प्रवास के दौरान उन्होंने गायत्री तीर्थ शांतिकुंज में दशकों पूर्व संपन्न किए साधना सत्र का अनुभव साझा किया।

ऋषियुग्म के प्रतिनिधि श्रद्धेयद्वय का आशीर्वाद लेने पहुँचे माननीय राज्यपाल महोदय ने बताया कि किस प्रकार पूज्य गुरुदेव एवं वंदनीया माताजी के निर्देशन में की गई साधना ने उनके जीवन को प्रकाशित किया व जिसके फलस्वरूप आज वे एक प्रतिष्ठित पद पर आसीन हैं।

माननीय राज्यपाल महोदय ने सपरिवार देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति महोदय से भी शिष्टाचार भेंट की। तत्पश्चात विश्वविद्यालय परिसर के केंद्र में स्थित प्रज्ञेश्वर महाकाल मंदिर में दर्शन कर पूरे परिसर का भ्रमण किया। इस दौरान उन्हें शांतिकुंज एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय की गतिविधियों से परिचित कराया गया। भ्रमण के दौरान उन्होंने एशिया के प्रथम बाल्टिक संस्कृति एवं अध्ययन केंद्र, दक्षिण एशियाई शांति एवं सुलह संस्थान, स्वावलंबन केंद्र का भी भ्रमण कर समस्त परियोजनाओं की प्रशंसा की।

उत्तराखंड विज्ञान शिक्षा एवं अनुसंधान केंद्र (यूसर्क) देहरादून की निदेशक डॉ० अनिता रावत जी का भी देव संस्कृति विश्वविद्यालय आगमन हुआ। प्रतिकुलपति जी से भेंट के अवसर पर उन्हें विश्वविद्यालय की गतिविधियों से अवगत कराया गया व साथ ही पूज्य गुरुदेव का साहित्य भी भेंट किया।

यूरोप में स्थित लाट्विया विश्वविद्यालय से 13 लोगों के एक समूह का देव संस्कृति विश्वविद्यालय आगमन हुआ। प्रतिकुलपति जी से भेंट कर सभी ने मार्गदर्शन प्राप्त किया। लाट्विया के इस समूह का आगमन विशेषकर भारतीय संस्कृति, योग, यज्ञ एवं वैज्ञानिक अध्यात्मवाद को जानने एवं समझने हेतु हुआ।

चेक गणराज्य के 35 लोगों के समूह का आगमन हुआ, जिनका मुख्य उद्देश्य देव संस्कृति विश्वविद्यालय में चार दिनों की विशिष्ट कार्यशाला में प्रतिभाग कर भारतीय संस्कृति, वैज्ञानिक अध्यात्मवाद एवं योग को जानना था।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के नैसर्गिक एवं दिव्य वातावरण में युगतीर्थ शांतिकुंज में सन् 1926 से सतत प्रज्वलित दिव्य अखंड दीप शताब्दी समारोह के उपलक्ष्य में सक्रिय कार्यकर्त्ता सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन में मुख्य अतिथि के रूप में उत्तराखंड के माननीय राज्यपाल ले०ज०(से०नि०) श्री गुरमीत सिंह जी एवं उत्तराखंड के माननीय वित्तमंत्री जी का आगमन हुआ।

इस विशिष्ट अवसर पर माननीय राज्यपाल महोदय ने सम्मेलन में आए सभी सृजन सेनानियों को संबोधित करते हुए कहा—"मैं एक सैनिक हूँ और मुझे खुशी इस बात की है कि परमपूज्य गुरुदेव ने सभी गायत्री परिजनों को सृजन सैनिक बनाया है। अखण्ड ज्योति की जो दिव्यता-भव्यता और अखंडता है, उस अखंड दीप को मैं प्रणाम करता हूँ। आप सभी से अपील करता हूँ कि ये जो आने वाले 3 साल हैं, इसमें आप अपनी साधनाएँ संकल्प के साथ-साथ पूज्य गुरुदेव के युगनिर्माणी कार्यों में पुरजोर तरीके से जुट जाइए।"

माननीय राज्यपाल जी ने आगे कहा—"जब मैं इस परिसर में आता हूँ तो यह अनुभव करता हूँ कि यह कोई साधारण परिसर नहीं, अपितु मंदिर है; क्योंकि यह परिसर जाग्रत है।" साथ ही उन्होंने यह भी कहा—"त्रिशूल के तीन शूल हमें तीन संदेश देते हैं कि यह भारत विकसित भारत, आत्मनिर्भर भारत और विश्वगुरु भारत है।

सम्मेलन में अतिथि के रूप में पधारे उत्तराखंड के माननीय वित्तमंत्री जी ने कहा—"देव संस्कृति विश्वविद्यालय मानवता के लिए कार्य कर रहा है। यहाँ त्याग-तपस्या और लगनशीलता के साथ कार्य कर रहे युगसेनानी देखने को मिलते हैं। मैं यहाँ आकर अपने आप को धन्य समझता हूँ; क्योंकि यह वह स्थान है, जिसे मैं मंदिर के रूप में देखता हूँ। पूज्य गुरुदेव ने जो युग-सुधार का पौधा लगाया था, वह आज वटवृक्ष के रूप में बदल चुका है।"

इस सम्मेलन में विश्वविद्यालय के समस्त संकायाध्यक्ष, विभागाध्यक्ष, अधिकारीगण समेत आचार्यगण व सभी विद्यार्थी एवं शांतिकुंज सम्मेलन में आए सभी क्षेत्रीय कार्यकर्त्ता उपस्थित रहे।

हिंदी दिवस के अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय में दो दिवसीय हिंदी साहित्य सम्मेलन का आयोजन किया गया है। हिंदी साहित्य सम्मेलन में मुख्य अतिथि के रूप में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के माननीय अध्यक्ष डॉ० विनय सहस्त्रबुद्धे जी, उच्च न्यायालय, नैनीताल के माननीय न्यायाधीश श्री विवेक भारती शर्मा जी, वैली ऑफ वर्ड्स शब्दावली के संस्थापक श्री संजीव चौपड़ा जी उपस्थित हुए।

कार्यक्रम का शुभारंभ परमपूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी के चित्र के समक्ष दीप प्रज्वलन कर किया गया। हिंदी साहित्य सम्मेलन में पधारे सभी मुख्य अतिथियों का आदरणीय प्रतिकुलपति महोदय जी ने गायत्री मंत्र-चादर एवं पुष्प-गुच्छ देकर स्वागत किया।

सम्मेलन में आए लोगों को संबोधित करते हुए वैली ऑफ वर्ड्स के संस्थापक डॉ० संजीव चौपड़ा जी ने कहा—"जो सम्मान हिंदी भाषा को मिलना चाहिए, वह सम्मान उसे नहीं मिल पा रहा है और हम उसको उसका सम्मान दिलाने के लिए निरंतर कार्यरत हैं।"

सम्मेलन में आए श्रोताओं के बीच अपने विचारों को रखते हुए माननीय मुख्य अतिथि डॉ० सहस्त्रबुद्धे जी ने कहा—"भाषा, संस्कृति की वाहक होती है। भारत अनेक भाषाओं वाला देश है, जिसकी बड़ी बहन हिंदी है।"

उन्होंने आगे कहा—"अगर हिंदी को विश्व में स्थापित करना है, तो सबसे पहले इसे हमें अपने हृदय में स्थापित करना होगा। हिंदी भाषा में हो रही मिलावट को बचाने के लिए आज के युवाओं को आगे आना होगा।"

अगली श्रृंखला में कार्यक्रम को संबोधित करते हुए प्रतिकुलपति जी ने कहा—"दुनिया की सबसे बड़ी जनसंख्या वाला देश भारत है, भारत में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा हिंदी है और भाषा की श्रेणी में देखा जाए तो हिंदी चौथे स्थान पर है, जिसे पहले स्थान पर ले जाने के प्रयास जारी हैं और हिंदी दिवस के अवसर पर यह हिंदी साहित्य सम्मेलन ऐसा ही एक प्रयास है।"

इस अवसर पर विश्वविद्यालय के समस्त संकायाध्यक्ष, विभागाध्यक्ष, आचार्यगण, छात्र-छात्राएँ एवं सम्मेलन में प्रतिभाग कर रहे सभी प्रतिभागी उपस्थित रहे। देव संस्कृति विश्वविद्यालय एवं वैली ऑफ वर्ड्स के संयुक्त तत्त्वावधान में चल रहे दो दिवसीय हिंदी साहित्य सम्मेलन का समापन किया गया।

इस अवसर पर विभिन्न क्षेत्रों से आए हिंदी साहित्यकारों एवं कवियों ने हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए चलाए जा रहे अभियानों की जानकारी दी, तो वहीं युवा पीढ़ी को हिंदी भाषा का ज्यादा-से-ज्यादा प्रयोग करने के लिए प्रेरित किया गया।

समापन समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में पधारे उत्तराखंड के पूर्व मुख्यमंत्री एवं माननीय सांसद डॉ० रमेश पोखरियाल 'निशंक' जी ने कहा—"समय का सदुपयोग सीखना चाहिए, जिन्होंने भी समय का सही उपयोग किया है, वे मानव से महामानव बन गए हैं। नालंदा एवं तक्षशिला विश्वविद्यालय में ज्ञान-विज्ञान अनुसंधान का कार्य होता था, वह परंपरा आज भी भारत में विद्यमान है और इसे विकसित करने की आवश्यकता है।"

उन्होंने आगे कहा—"साहित्य और संस्कृति का अनुपम दृश्य आपके बीच आकर देखने को मिल रहा है। पूज्य गुरुदेव के चरणों में रहने का सौभाग्य मुझे भी प्राप्त हुआ है। ऊर्जा का केंद्र यह विश्वविद्यालय है और इसमें आए सभी प्रतिभागियों का हृदय से स्वागत करता हूँ। देव संस्कृति विश्वविद्यालय मात्र देश की आशाओं का ही केंद्र नहीं, अपितु यह आने वाले समय में विश्व की आशाओं का भी केंद्र बनेगा।"

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने कहा—"यह समय भारत के जागरण का है, समय करवटें ले रहा है, ऐसे समय में सभी को सावधान होकर अपनी भूमिका को ईमानदारी से पूरा करना चाहिए। भारत को दिशा देने का कार्य हिंदी एवं संस्कृत भाषा में विद्यमान है; संस्कृत भाषा में जितना ज्ञान का भंडार है, उतना किसी और भाषा में नहीं है।" इससे पूर्व वैली ऑफ वर्ड्स के संस्थापक श्री संजय चौपड़ा जी ने हिंदी साहित्य सम्मेलन के विविध कार्यक्रमों के साथ दो दिवसीय सम्मेलन की उपलब्धियों पर चर्चा की।

वरिष्ठ साहित्यकार पद्मश्री लीलाधर जगूड़ी जी ने अपने कई दशकों के साहित्य अनुभवों को साझा करते हुए युवा पीढ़ी को श्रेष्ठ हिंदी साहित्य निमित्त रूप से अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया। इस अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के सभी विभागाध्यक्ष को प्रशस्ति पत्र एवं स्मृतिचिह्न देकर सम्मानित किया।

प्रख्यात शिक्षाविद्, भारत के द्वितीय राष्ट्रपति, महान दार्शनिक भारतरत्न डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन की जयंती एवं शिक्षक दिवस के अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय में सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया। जिसमें मुख्य अतिथि के रूप में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के आदरणीय कुलपति श्री शरद पारधी जी, प्रतिकुलपति जी एवं आदरणीय कुलसचिव श्री बलदाऊ देवांगन जी उपस्थित हुए। कार्यक्रम का शुभारंभ परमपूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी के चित्र के समक्ष दीप प्रज्वलन कर किया गया। शिक्षक दिवस के कार्यक्रम में उपस्थित सभी लोगों को वीडियो संदेश के माध्यम से संबोधित किया।

परम श्रद्धेय कुलाधिपति महोदय डॉ० प्रणव पण्ड्या जी ने कहा—"एक शिक्षक वो, जो अपने जीवन में पढ़ता, सीखता है तथा जो बातें ग्रहण करता है, उन सभी का निचोड़ वो अपने शिष्यों को देने का कार्य करता है। विद्यार्थियों को अपने गुरु की अच्छाइयों का तथा उनकी अच्छी बातों का संकलन करना चाहिए और उसे अपने जीवन में उतारना चाहिए।"

शिक्षक शब्द के अर्थ समझाते हुए श्रद्धेय ने कहा—"'शि' का अर्थ शिखर तक ले जाने वाला, 'क्ष' अर्थात क्षमता बढ़ाने वाला और 'क' का अर्थ कमजोरी दूर करने वाला होता है।" कार्यक्रम के अंत में सभी आचार्यगणों को उपहार देकर सम्मानित किया गया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के पर्यटन विभाग द्वारा विगत दिनों विश्व पर्यटन दिवस मनाया गया। इस अवसर पर विभाग द्वारा विगत 7 दिनों से विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया था। इन प्रतियोगिताओं में पूरे विश्वविद्यालय के लगभग 300 से ज्यादा विद्यार्थियों ने प्रतिभाग लिया।

एक विशेष कार्यक्रम में प्रतिकुलपति महोदय ने उपस्थित हो प्रतिभागियों का उत्साहवर्द्धन करते हुए उन्हें पुरस्कार एवं प्रमाणपत्र वितरित किए। विश्व पर्यटन दिवस 2023 की थीम—पर्यटन एवं हरित निवेश एवं धार्मिक पर्यटन पर प्रतिकुलपति जी ने सभी को संबोधित भी किया। इस कार्यक्रम में पर्यटन विभाग के विभागाध्यक्ष, शिक्षकगण, विद्यार्थी एवं अनेक प्रतिभागी उपस्थित रहे।

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी देव संस्कृति विश्वविद्यालय के पर्यावरण विज्ञान विभाग में 16 सितंबर को विश्व ओजोन दिवस के उपलक्ष्य में रचनात्मक और ज्ञानवर्द्धक प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। परंपरा के अनुसार कार्यक्रम का आरंभ कुलपिता एवं कुलमाता के चित्र के समक्ष दीप प्रज्वलित कर हुआ। विश्व ओजोन दिवस 2023 की थीम मोंट्रियल प्रोटोकॉल-ओजोन परत को ठीक करना और जलवायु-परिवर्तन को कम करना है।

बहुत-सी प्रतियोगिताओं जैसे कविता पाठ, तात्कालिक भाषण, प्रश्नोत्तरी, स्पेल बी आदि का आयोजन किया गया। मुख्य अतिथि के रूप में पर्यटन विभाग के विभागाध्यक्ष ने पर्यावरण, पृथ्वी और मानव जीवन के लिए ओजोन परत की महत्ता के बारे में विस्तार से बताया। कार्यक्रम के अंत में डॉ. मोहित शर्मा ने सभी छात्रों का एवं मुख्य अतिथि का धन्यवाद ज्ञापित किया।

एक भारत, श्रेष्ठ भारत के कार्यक्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के 10 एनसीसी कैडेट्स ने प्रतिभाग किया। इसमें उन्होंने अपने हुनर और मेहनत के दम पर 16 गोल्ड एवं 11 रजत पदकों को जीतकर देव संस्कृति विश्वविद्यालय का नाम रोशन किया। प्रतिभाग किए सभी कैडेट्स का प्रतिकुलपति जी ने उत्साहवर्द्धन किया। भविष्य में और भी ऊँचाइयों तक पहुँचें, इसके लिए शुभकामनाएँ दीं।

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के पावन पर्व पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय में दीपयज्ञ का आयोजन किया गया। दीपयज्ञ के आयोजन में मुख्य अतिथि के रूप में विश्वविद्यालय के आदरणीय कुलसचिव महोदय उपस्थित हुए।

आए सभी लोगों को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा—"श्रीकृष्ण जन्माष्टमी का पावन पर्व हो, परमपूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी का संरक्षण हो और प्रज्ञेश्वर महाकाल का मंदिर हो, ये सब अपने में किसी सौभाग्य से कम नहीं हैं।"

प्रज्ञेश्वर महाकाल में दीप महायज्ञ के इस विशेष आयोजन में विश्वविद्यालय परिवार के सभी सम्मानित संकायाध्यक्ष, विभागाध्यक्ष, अधिकारीगण, आचार्यगण एवं समस्त छात्र-छात्राएँ उपस्थित हुए। ❑

साधना शताब्दी : शतवर्षीय तप-साधना संकल्प से संपूर्णता तक

'अखण्ड ज्योति' भले ही लोहे की मशीनों में छपती है, लेकिन इसका स्वरूप सोने का है। वर्ष 1926 ई० की वसंत पंचमी को प्रज्वलित अखण्ड दीप की अखण्ड ज्योति इसके नाम का आधार बनी। जैसा नाम-वैसा रूप, जैसा रूप-वैसा गुण, इसके दैवी स्वरूप की दिव्यता को उजागर करते हैं।

अपने प्रथम अंक के प्रकाशन से लेकर अब तक और आगे भी यह सत्य हमेशा उजागर होता रहा है और होता रहेगा कि इसका संचालन चेतना की उच्चतम कक्षा से होता है। तभी तो इसके अक्षर-अक्षर में अमृत, पंक्ति-पंक्ति में प्राण और पृष्ठ-पृष्ठ में प्रकाश लहराता है। यह युगऋषि के साधना-दीप की अखंडता से प्रकाशित 'अखण्ड ज्योति' है। इसमें उनकी आत्मज्योति से प्रकाशित ज्ञानज्योति का प्राणबल और आध्यात्मिक ऊर्जा है। सभी अनुभवी जनों का अनुभव यही कहता है—"जो प्रकाश अखण्ड दीप की अखण्ड ज्योति में है, वही प्रकाश अखण्ड ज्योति पत्रिका में है। परमपूज्य गुरुदेव की आत्मज्योति ही इसकी ज्ञानज्योति बनी है।"

इसका प्रत्येक पृष्ठ, पंक्ति और अक्षर गुरुदेव के प्राण, प्रेम व प्रकाश से पूरित हैं। तभी तो इसकी ज्ञान-चेतना इसे पढ़ने वाले परिजनों को बरबस अपने प्रेम में लपेट लेती है। उन्हें प्रेरित करती है, सद्बुद्धि का दान देती है और उँगली पकड़कर सन्मार्ग पर चलाती है। भगवान विष्णु के शरीर से जिस तरह एकादशी ने जन्म लिया था, उसी तरह यह 'अखण्ड ज्योति पत्रिका' प्रज्ञापुरुष पूज्य गुरुदेव की चेतना से जन्मी है। शास्त्र कहते हैं कि एकादशी का व्रत करने वाले, इस तिथि को नारायण का पूजन करने वाले मोक्ष पाकर वैकुंठवास करते हैं। उन्हें भगवान विष्णु का सतत सान्निध्य मिलता है। कुछ ऐसी ही कथा अखण्ड ज्योति की भी है। जिस तरह एकादशी भगवान विष्णु को अतिशत प्रिय है, कुछ उसी तरह अखण्ड ज्योति प्रज्ञापुरुष गुरुदेव को अतिप्रिय है। इसका नियमित अध्ययन-मनन इसके पाठकों द्वारा किया जाने वाला व्रत है। इसका चिंतन, अनुशीलन प्रज्ञापुरुष का पूजन है। यह भी एकादशी की तरह मोक्षप्रदायिनी है। इसका व्रत-पूजन यानी कि अध्ययन-अनुशीलन करने वाला इहलोक में ज्ञान और परलोक में मोक्ष प्राप्त करता है। प्रज्ञालोक में जाकर वह प्रज्ञापुरुष का पावन सान्निध्य प्राप्त करता है।

'अखण्ड ज्योति' भले ही लोहे की मशीनों में छपती है, लेकिन इसका स्वरूप सोने का है। वर्ष 1926 ई० की वसंत पंचमी को प्रज्वलित अखण्ड दीप की अखण्ड ज्योति इसके नाम का आधार बनी। जैसा नाम-वैसा रूप, जैसा रूप-वैसा गुण, इसके दैवी स्वरूप की दिव्यता को उजागर करते हैं।

वर्ष 1926 ई. गुरुदेव की गायत्री-साधना एवं ज्ञान-साधना से जुड़ा हुआ है। जो अखण्ड दीप की अखण्ड ज्योति में है, वही अखण्ड ज्योति पत्रिका में है। दोनों ही प्रज्ञापुरुष की पराचेतना के परम प्रकाश से जुड़े हैं। इस सत्य की अनुभूति करने वालों को इसमें '**तज्जयात्प्रज्ञालोकः**'॥ 3/5 के योगसूत्र की अनुभूति होती है। जो अखण्ड दीप की

अखण्ड ज्योति में अथवा पत्रिका में प्रकाशित अखण्ड ज्योति के प्रकाश में सिद्धज्योति-आत्मज्योति एवं ज्ञानज्योति का साक्षात्कार कर लेता है, उसे यह अनुभव अवश्य होता है। अब जबकि अखण्ड दीप की अखण्ड ज्योति के सौ वर्ष या शताब्दी पूर्ण होने जा रही है, तो इसकी सबसे अधिक प्रसन्नता 'अखण्ड ज्योति पत्रिका' को है; क्योंकि इसे भी तो अखण्ड दीप की अखण्ड ज्योति से प्रकाश, प्राण व प्रेरणा प्राप्त होती है।

इसलिए साधना शताब्दी के पर्व का हर्ष मनाने का पहला पग भी उसी को उठाना है; क्योंकि अखण्ड दीप की सिद्ध ज्योति के साथ इस अखण्ड ज्योति पत्रिका ने भी तो अपने परिजनों-पाठकों के मन और जीवन में भरपूर प्रकाश उँड़ेलने में कोई कोर-कसर नहीं रखी, कोई कमी-कमजोरी नहीं छोड़ी। आखिरकार प्रज्ञापुरुष पूज्य गुरुदेव इसके जन्मदाता हैं, जीवनदाता हैं। उनकी प्रज्ञा की प्रखरता ने इसे जन्म दिया, उन्हीं का प्रज्ञालोक इसे जीवन देता है।

इसलिए इस पत्रिका ने उनके संस्मरण का स्मरण एवं उनकी शतवर्षीय साधना के सुपरिणाम बताने का सौभाग्य अपने नाम अंकित करने का निश्चय किया है। वैसे भी परमात्मा का स्मरण उनके नाम-रूप, गुण-लीला के रूप में करने का विधान है। यहाँ पर भी यही किया जाना है। इसके पहले क्रम में उनके व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति एवं दूसरे क्रम में उनकी शतवर्षीय साधना के परिणाम की अभिव्यक्ति दरसाने का साहस सँजोया गया है। यह प्रज्ञापुरुष के परमावतार की लीला-कथा का भक्तिपूर्ण स्मरण एवं उन्हीं को किया गया समर्पण है।

तुलसीदास जी रामकथा के आरंभ में कहते हैं—

'सब जानत प्रभु प्रभुता सोई।
तदपि कहें बिनु रहा न कोई॥'

प्रभु की प्रभुता सभी जानते हैं, परंतु भक्तगण अपनी भक्ति के कारण इसका बखान किए बिना रह नहीं पाते। इसका कारण यही है कि भगवान के गुण-गान में भक्तों को सुख मिलता है। उन्हें भगवान के प्रेम की अनुभूति होती है। उन्हें भक्तिरस और प्रेमरस का स्वाद मिलता है। अन्यथा भगवान की अनंतता को भला कौन जान पाया है और कौन कह पाया है। जिसका गुणगान करने में, लीलाकथा कहने में महर्षि वाल्मीकि एवं महर्षि व्यास नहीं सक्षम हो पाए, उसे भला हम कैसे ही कह सकते हैं। दुर्बल-रोगी तन, निर्बल-मलीन मन और मरण से आक्रांत जीवन में भला ऐसी सामर्थ्य कहाँ?

सामर्थ्य तो उनके इस कथन में है, जिसमें उन्होंने कहा था—"उँगलियाँ किसी की भी हों, पर चेतना मेरी ही होगी। अखण्ड ज्योति के अक्षरों को गूँथने वाले हाथ किसी के हों, पर उनमें क्रियाशील प्राण मेरे ही होंगे।" उनके इस कथन को अपनी साधना समझने वाली कलम ने, उनके वचनों पर विश्वास करने वाले मन ने और उनकी ही भक्ति को स्वयं में सँजोने वाले हृदय ने अपना भरोसा और अधिक दृढ़ करके इस उपक्रम का आरंभ किया है। यह आरंभ एक नया प्रारंभ है।

इसकी शुरुआत नवयुग की ब्रह्मवेला में की जानी है। वर्ष 2024, 2025 एवं 2026 के इन तीन वर्षों में यह क्रम चलता रहेगा। भरोसा है कि पाठक, परिजन, सुधी-स्वजन इसे स्नेह से स्वीकार करेंगे, अपनत्व से अपनाएँगे और हम सब साथ-साथ अपने प्रभु श्रीराम की लीलाकथा का स्मरण करेंगे। श्रीमद्भागवत में भगवान, देवर्षि नारद से कहते हैं—"हे नारद! मैं न तो वैकुंठ में बसता हूँ और न क्षीरसागर में। मेरा वास तो वहाँ है, जहाँ मेरे भक्त मेरी कथा कहते हैं।"

ठीक इसी तरह से श्रीमद्भगवद्गीता के दसवें अध्याय में श्रीभगवान के वचन हैं—

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

मच्चित्ता मद्‌गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

—*श्रीमद्भगवद्गीता (10/9-10)*

अर्थात निरंतर मुझमें मन लगाने वाले और मुझमें ही प्राणों को अर्पण करने वाले भक्तजन मेरी भक्ति की चर्चा के द्वारा आपस में मेरे प्रभाव को जानते हुए तथा गुण और प्रभाव सहित मेरा कथन कहते हुए ही निरंतर संतुष्ट होते हैं और मुझमें निरंतर रमण करते हैं। उन निरंतर मेरे नाम-रूप-गुण और लीला-कथा को कहने वाले, सुनने वाले और कह-सुनकर मेरे से युक्त होने वालों को और प्रेमपूर्वक भजने वाले भक्तों को मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।

भागवत और गीता में भगवान का यह कथन अखण्ड ज्योति पत्रिका में प्रकाशित प्रारंभिक पृष्ठ पर उनके स्मरण का और साधना शताब्दी की विशिष्ट लेखमाला के उद्‌देश्यों को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है। वैसे भी हमें तब की याद है, जब वंदनीया माताजी अखण्ड ज्योति में प्रकाशित होने वाले लेखों को स्वयं फुरसत के क्षणों में पढ़ा करती थीं। साथ ही उनका विश्लेषण, विवेचन भी करतीं। तब गुरुदेव हँसते हुए कहते थे—"भाई! मैं तो केवल लेखक हूँ, लेकिन माताजी संपादक हैं। उनकी बात तो माननी पड़ेगी।" इसी तरह जब गुरुदेव लेखन सिखाते थे, तो लेखों की कमियाँ गिनाते हुए कहते—"बात सिर्फ लिखने की नहीं है; इसके भाव-विचारों से, मुझसे जुड़ने की है। चेतना की उस कक्षा से संपर्क करने की है, जहाँ से अखण्ड ज्योति में प्रकाश आता है।"

बहुत दिन बीते, लेकिन उनके वचनों को हृदय अभी तक उसी तरह से सुन रहा है। इन अनेक-अनेक वर्षों बाद उनकी कथा सबसे पहले उन्हीं को सुनाने की कोशिश कर रहा हूँ। गोस्वामी जी महाराज कहते हैं—'**जौं बालक कह तोतरि बाता। सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता॥**' बालक जब अपनी तोतली वाणी से बोलता है, तो भले ही बाकी सब उसकी हँसी उड़ाएँ, पर उसके अपने माता-पिता बड़े प्रसन्न-मन से उसे सुनते हैं।

तो अपना भरोसा तो यही है कि साधना शताब्दी वर्ष में लिखी जा रही इस कथा को अपने गुरु पिता और गुरु माता अवश्य प्रसन्न मन से सुनेंगे। वैसे भी भूलों को-कमियों को क्षमा करना उनका स्वभाव है— '**रहति न प्रभु चित चूक किए की। करत सुरति सय बार हिए की॥**' प्रभु के चित्त में तो भक्तों की भूल-चूक रहती ही नहीं है। वे तो हृदय से सुनते हैं। वैसे भी भगवान की कथा की सार्थकता तो भक्तों के हृदय में भक्ति की रसानुभूति प्रदान करना है। इस प्रयास का प्रकाश तो अगले तीन वर्षों तक प्रकाशित होता रहेगा। ❑

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

सच्चा जिसने किया समर्पण

गुरु की वाणी जिसने मानी, उसका बेड़ा पार हो गया।
सच्चा जिसने किया समर्पण, उसका अद्‌भुत संसार हो गया॥

समर्थ गुरु के संरक्षण में, साधक अपनी मंजिल पाता,
बहुत कठिन सद्‌गुरु का मिलना, सुयोग्य शिष्य ही उसको पाता,
गुरु-शिष्य का मिलन हुआ तो, सृजन धरा पर साकार हो गया।
सच्चा जिसने किया समर्पण, उसका अद्‌भुत संसार हो गया॥

गुरु का अनुभव शक्ति शिष्य की, करते हैं निर्माण अनोखा,
गुरु के हैं अनुदान अनोखे, दुनिया ने जिसको खुद देखा,
गुरु-शिष्य मिल एक हो गए, यह अद्‌भुत व्यवहार हो गया।
सच्चा जिसने किया समर्पण, उसका अद्‌भुत संसार हो गया॥

अवतार परंपरा यही बताती, सृजन-साधना गुरु करवाते,
अनाचार बढ़ जाता जब तब, गुरु रूप भगवान हैं आते,
गुरु को जिसने मन से माना, उसका जग से उद्धार हो गया।
सच्चा जिसने किया समर्पण, उसका अद्‌भुत संसार हो गया॥

तपसी-निर्लोभी, ज्ञानी, सद्‌गुरु, बड़े भाग्य से मिलते हैं,
परिवर्तन होता है युग का, संतोष के पंकज खिलते हैं,
वर्तमान में युगऋषि का मिलना, जीवन का सर्वोत्तम उपहार हो गया।
सच्चा जिसने किया समर्पण, उसका अद्‌भुत संसार हो गया॥

—विष्णु कुमार शर्मा 'कुमार'

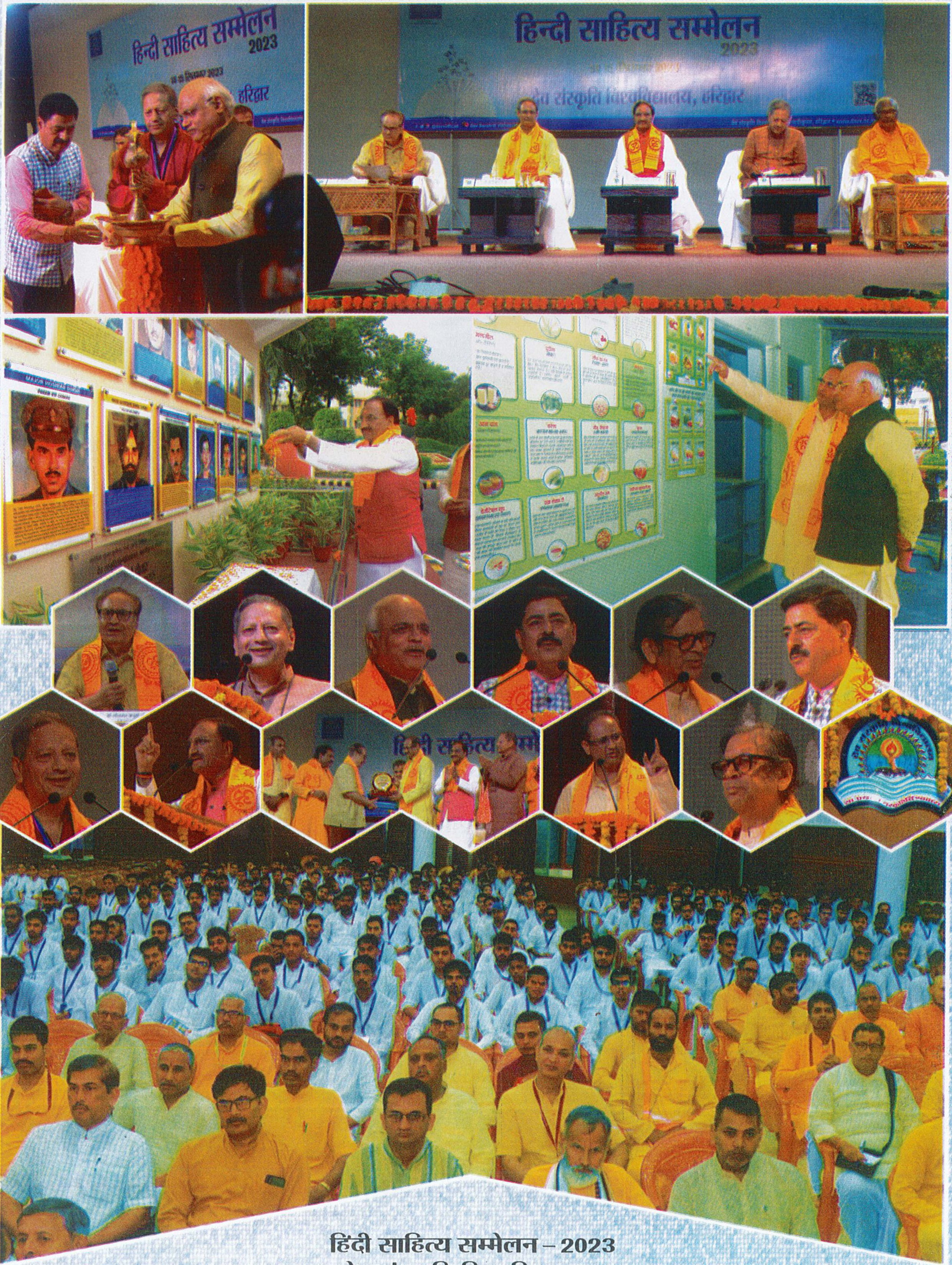

हिंदी साहित्य सम्मेलन – 2023
देव संस्कृति विश्वविद्यालय

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01-11-2023
Regd. N0. Mathura-025/2021-2023
Licensed to Post without Prepayment
N0. : Agra/WPP-08/2021-2023

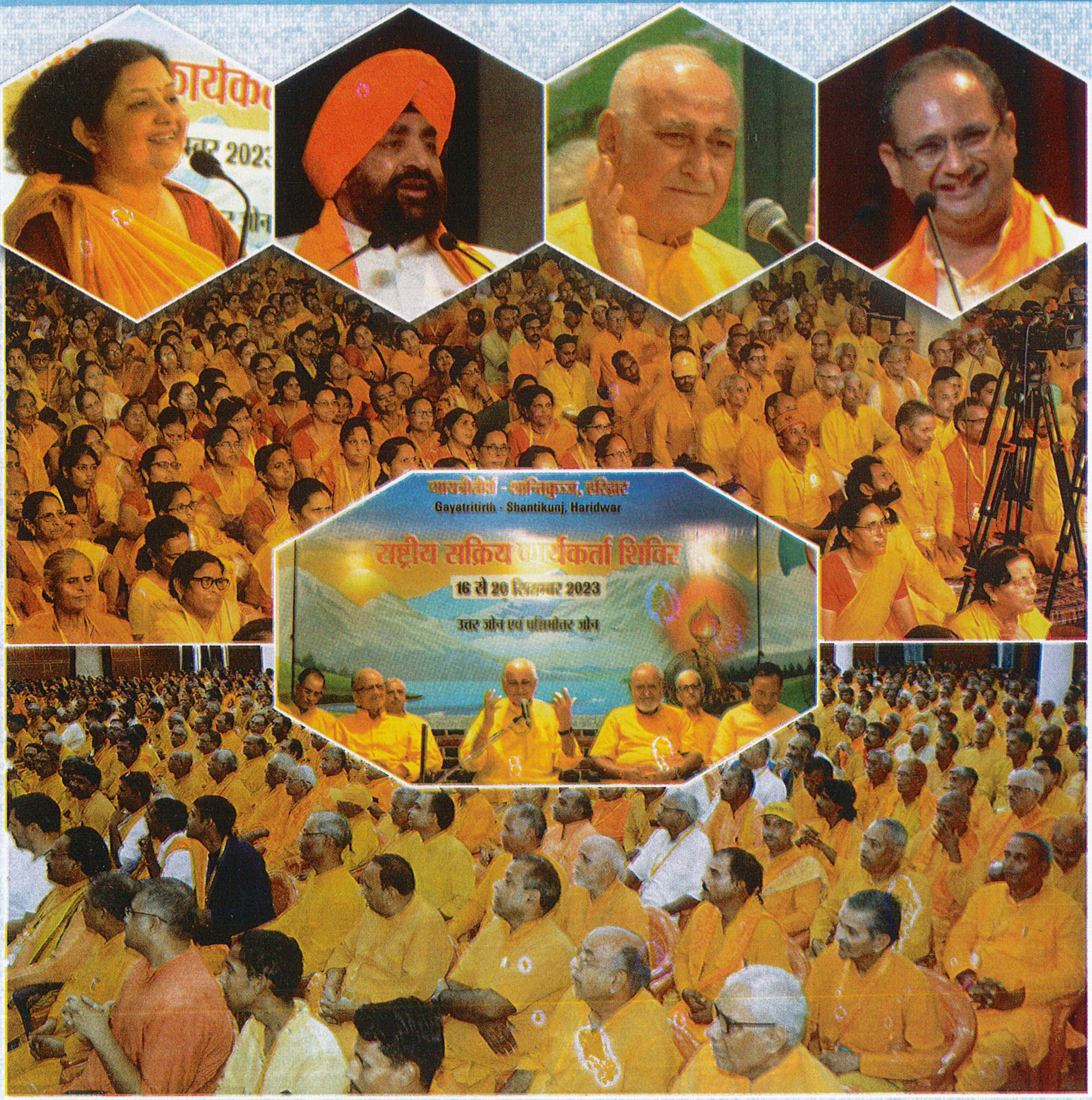

युगतीर्थ शांतिकुंज हरिद्वार में संपन्न हुआ राष्ट्रीय सक्रिय कार्यकर्त्ता शिविर

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक-मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा-281003 से प्रकाशित। संपादक-डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष — 0565- 2403940, 2972449, 2412272, 2412273 **मोबाइल** — 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल– akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

Shantikunj Rishi Chintan Youtube Channel

Click here to subscribe Rishi Chintan Youtube Channel

Shantikunj Rishi Chintan Youtube Channel के वीडियो युग निर्माण मिशन के लिए समर्पित है! हमारा एकमात्र उद्देश्य परम पूज्य गुरुदेव के विचारों को जन-जन तक पहुंचाने का है।

पूज्य गुरुदेव द्वारा साधकों को दिए गए दिव्य प्रवचन, अमृत ज्ञान, ध्यान साधना व आराध्य द्वारा लिखित पुस्तकों पर वीडियो, अखण्ड ज्योति के आर्टिकल, अमृत वाणी

परम वन्दनीय माता जी द्वारा गाए गए भावनाशील प्रज्ञा गीत जो कि पूज्य गुरुवर को समर्पित रहे

परम श्रद्धेय जी द्वारा लिखित पुस्तक आध्यात्मिक जीवन पर आधारित वीडियो

एवम् आदरणीय चिन्मय भैया जी के दिव्यता से भरे उद्बोधन

प्रस्तुत हैं शांतिकुंज ऋषि चिंतन चैनल पर

एक छोटा सा प्रयास सभी प्रियजनों को गुरु के ज्ञान का अमृत पहुंचाने का...आप भी इस अमृत के ज्ञान को अधिक से अधिक लोगों तक पहुंचाने का प्रयास कर गुरुकार्य में भागीदार अवश्य बनें "!

आप इन वीडियो को डाउनलोड करके मिशन की गरिमा के अनुरूप प्रयोग कर सकते हैं।

धन्यवाद

Shantikunj Rishi Chintan Youtube Channel को Subscribe करने के लिए क्लिक कीजिये और Bell 🔔 बटन को जरूर दबाएं ताकि आप को नोटिफिकेशन मिलते रहे।

Shantikunj Rishi Chintan Youtube Channel

Click here to subscribe Rishi Chintan Youtube Channel

All World Gayatri Pariwar Official Social Media Platform

शांतिकुंज हरिद्वार के ऑफिशल व्हाट्सएप चैनल awgpofficial Channel* को Follow करे

👇👇👇

https://whatsapp.com/channel/0029VaBQpZm6hENhqlhg453J

Shantikunj WhatsApp:- शांतिकुंज की गतिविधियों से जुड़ने के लिए **8439014110 पर अपना नाम लिख कर WhatsApp करें**

Official Facebook Page:-

https://www.facebook.com/awgpofficial

https://www.facebook.com/ShantikunjRishiChintan

https://www.facebook.com/awgplive

Official Twitter:-

https://twitter.com/awgpofficial

https://twitter.com/DrChinmayP

Official Instagram:-

https://www.instagram.com/awgpofficial

https://www.instagram.com/shantikunjrishichintan

Official Telegram:-

https://t.me/awgpofficial

https://t.me/shantikunjrishichintan

https://t.me/awgpofficialgroup

Shantikunj Rishi Chintan Youtube Channel

Click here to subscribe Rishi Chintan Youtube Channel

Youtube Channel:-

https://www.youtube.com/c/RishiChintan

https://www.youtube.com/c/shantikunjvideo

AWGP Official Website

http://www.awgp.org/

http://literature.awgp.org